ओ३म्

आर्य समाज सान्ताक्रुज़

ARYA SAMAJ SANTACRUZ

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-10 * अंक-5 * मुम्बई * मई-2019 * मूल्य-रु.9/-

ऋग्वेद

यजुर्वेद

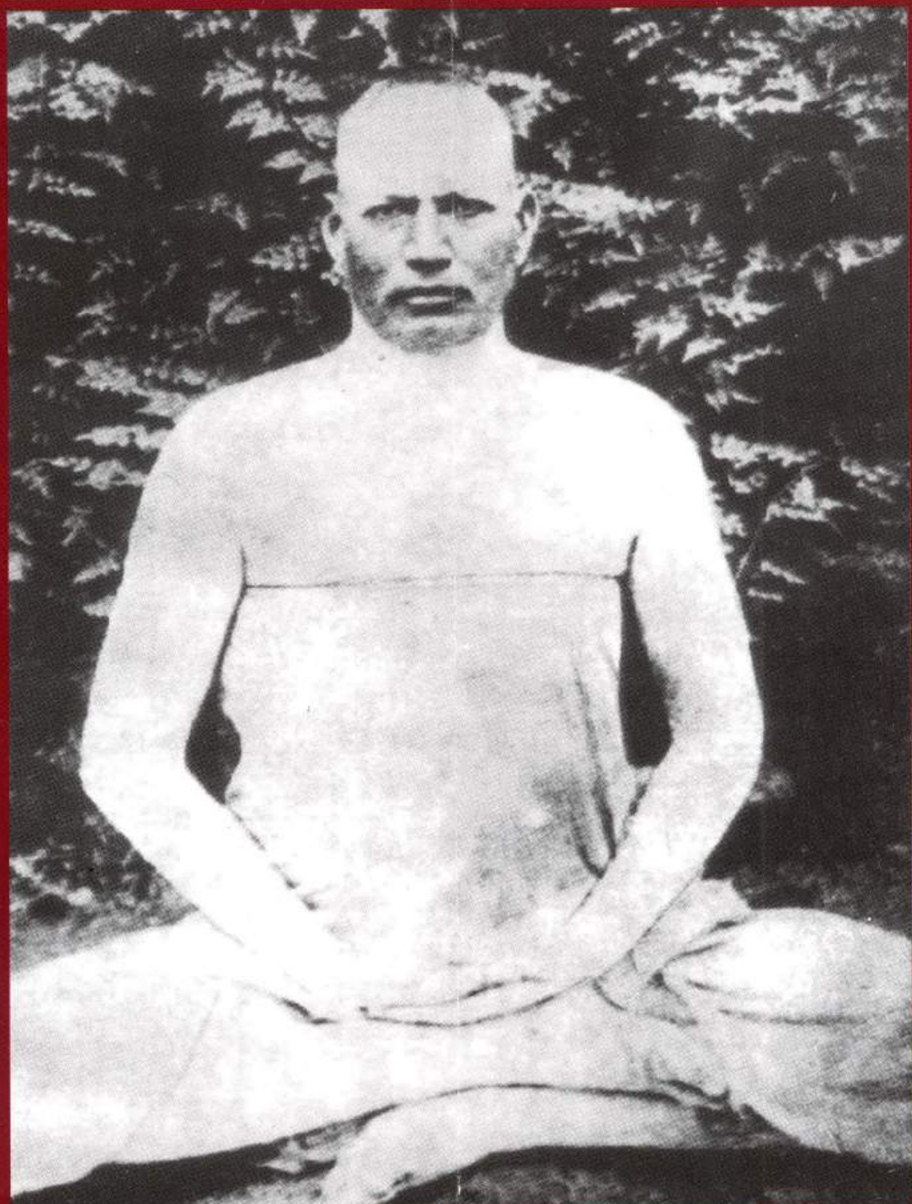

सामवेद

स्वामी दयानन्द सरस्वती

अथर्ववेद

सत्य बोलो, मधुर बोलो

पं. नन्दलाल निर्भय सिद्धांताचार्य पत्रकार

वाणी मनुष्य के चिंतन का फलित है और उसका साधन भी । चिंतन के बगैर वाणी और वाणी के बगैर चिंतन संभव नही है । चिंतन और वाणी के बिना मनुष्य का अस्तित्व संभव नही है। मनुष्यके जीवन मे कई समस्याए आती है यदि ध्यान दिया जाए, तो कई सारी समस्याओ का समाधान वाणी के संयम और उसके सदुपयोग से निकाल सकता है। वाणी का मन पर गहरा संस्कार पड़ता है ।

सुनों सज्जनों ध्यान से, यदि चाहों कल्याण ।
बनो विनम्र सुशील तुम, जगत करेगा मान ॥
सफलता का सूत्र है, पहले मन में तोल ।
कडुवा कभी न बोलना मधुर वचन नित बोल ॥

संत तुलसीदास जी ने भी कहा है-
हमे संतो की बात अवशय माननी चाहिए।
ओ३म् नाम मणि दीप धरू जीह दे हरी द्वार,
तुलसी भीतर बाहरहु जो वाहसि उजियार ।

असंतुलित वाणी के कारण कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं । कटु वाणी के दुष्प्रभाव से बचने के लिए ही तुलसीदास जी कहते हैं, अंदर की आत्मा और बाहर का जगत, इन दोनों के मध्य वाणी ही देहरी है। अंदर और बाहर दोनों और अगर तुझे प्रकाश चाहिए, तो वाणी की इस देहरी पर राममान का बिना तेल-बाती का मणि दीप रख दे।

आध्यात्मिक महापुरुषों ने आम लोगों के सामने हमेश 'सत्यं वद' के ही विचार प्रस्तुत पि हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए मनु ने कहा है कि मनुष्य के सारे व्यवहार वाणी पर ही अवलंबित होते हैं। इसलिए जिसने इस वाणी को चुरा लिया यानी अपनी वाणी पर नियंत्रण नहीं रखा, उसने सब प्रकार की चोरी अर्थात सभी प्रकार की गलती एक साथ की।

ईश्वर ने मनुष्य को सबसे बड़ी नेमत दी है वाणी की । यह मनुष्य के चिंतन का फलित है और उसका साधन भी । चिंतन के बगैर वाणी नहीं और वाणी के बगैर चिंतन संभव नहीं है । चिंतन और वाणी के बिना मनुष्य का अस्तित्व संभव नहीं है। मनुष्य के रोजमर्रा के जीवन में कई समस्याएं होती हैं। यदि ध्यान दिया जाए तो कई सारी समस्याओं का समाधान वाणी के संयम और उसके सदुपयोग में निकल सकता है । मनुष्य के सारे चिंतनशास्त्र वाणी पर आधारित हैं। आध्यात्मिक दर्शन का सारा प्रयास विचारों को वाणी में ठीक से पेश करने के लिए होता है । वाणी विचार का शरीर ही है । कोई खास विचार किसी खास शब्द में ही समाता है। यदि हम वाणी के साथ विचार का तालमेल नहीं बिठाते हैं, तो अलग-अलग तरह की कई गलतियां हमारे सामने आने लगती हैं। इसलिए गंभीर चिंतन करनेवाले चिंतक निश्चित वाणी की खोज करते रहते हैं । पतंजलि के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने चित्त शुद्धि के लिए योग-सूत्र लिखे शरीर शुद्धि के लिए वैद्यक लिखा और वाक शुद्धि के लिए व्याकरण महाभाष्य लिखा । महत्वपूर्ण यह है कि व्याकरण का उद्देश वाणी की शुद्धि करना माना गया है। भक्ति मार्ग हमे यह शिखा देता है कि वाणी से हरिनाम लेते रहना चाहिए। शरीर संसार में काम भले ही करता रहे, किंतु वाणी में संसार नही। वाणी का मन पर गहरा संस्कार पडता रहता है । कोई व्यक्ति अगर सुंदर भजन सुनकर सो जाता है तो सवेरे उठते ही उसे बराबर वही भजन अपने आप याद आता रहता है। भजन का नाद नीद में भी मन में गुंजता रहा है ।

वाणी से मित्रता भी की जा सकती है और वैर भी । वाणी का वैर जितना टिकता है, उतना शास्त्रों का भी नहीं टिकता। यदि आपने किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के अनुसार सब कुछ प्रदान कर दिया और साथ ही कड़वे वचन का भी प्रयोग कर दिया तो आपका सारा किया धरा काम भी समाप्त मान लिया जाता है। इसलिए सारे विश्व से मैत्री की इच्छा रखनेवाले विश्वामित्र की प्रार्थना है- 'अमृतं मे आसन' यानी मेरी वाणी में अमृत हो । अक्सर देखा जाता है कि उतावले लोग कटु बोलते है । जो लोग लगनशील व परिश्रमी होते हैं, वे भी उतावलेपन में कटु बोल जाते हैं । पिर काम सिद्ध हो जाने के बाद सामना हो जाते हैं । यह सही नहीं है । हर परिस्थिती में हमारी वाणी अप्रभावित रहनी चाहिए।

मधुरता सत्य का अनुपान है और मितता उसका पथ्य है । जिसे हम सम्यक वाणी कहते हैं वह सत्य मित और मधुर होती है और वही परिणामकारक भी होती है। समाज का हित किस बात में है, यह समझना कठिन भी हो सकता है, परंतु सम्यक वाणी से ही वह सधेगा, यह किसी भी आदमी के लिए समझना कठिन नहीं होना चाहिए। समाज हित के नाम पर अपनी वाणी दूषित न करें। इन दिनों सभी वाणी दुर्लभ हो गई है। सभ्य वाणी को खोकर सुलभ साधनों की प्राप्ति करना कबि की भाषा में कहें तो नेत्र बेचकर चित्र खरीदने के समान है। मानव की महिमा केवल सुलभतम साधनों के संपादन में ही नहीं, अपितु उनको प्राप्त करने, उनका कुशलतम उपयोग करने में हैं। वाणी पर संयम चित्त की एकाग्रता से आ सकता है। चित्त की एकाग्रता संगीत सुनने में संकीर्तन में नहीं होगी, उसकी कसौटी ध्यान में होगी । अक्सर हम ध्यान के लिए सब काम छोडकर शांत बैठते हैं। तब पता चलता है कि चित की कैसी अवस्था है । चित्त की चंचलता की परीक्षा के लिए ध्यान जितना उपयोगी है, उतना दूसरा कोई साधन उपयोगी नहीं है ।

ध्यान के समय चित्त इसलिए एकाग्र नही होता, क्योंकि उसे आदेश मिलता है- चुप बैठो। चुप बैठौ का आदेश मिलता है, तो चित्त दौड़ने लगता है। व्यक्ति का ध्यान अच्छी जगह भी जा सकता है और गंदी जगह भी । दोनों में ध्यान में बाधा आई, चित्त पर अंकुश नहीं रहा । चित्त पर अंकुश रहता है या नहीं, यह देखना हो तो साधक के लिए ध्यान ही कसौटी है। दूसरी कसौटी नहीं। ध्यान के समय मन यदि इधर-उधर दौड़ता है, तो ध्यान सवता नहीं है। इससे एक लाभ यह होता है कि मन कहां-कहां गया, यह मालूम चल जाता है । इसके बाद हम मन को नियंत्रित करते हैं। उसे साधते है ।

आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)
चलभाषा क्रमांक-९८१३८४५७७४

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : १० अंक ५ (मई – २०१९)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : **चन्द्रगुप्त आर्य**
संपादक : **संगीत आर्य**
सह संपादक : **संदीप आर्य**
कार्यकारी संपादक : **विनोद कुमार शास्त्री, लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.**

विज्ञापन की दरें : शुल्क
— पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/– — एक प्रति : रु. ९/–
— १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/– — वार्षिक : रु. १००/–
— १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/– — आजीवन : रु. १०००/–
— विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।
वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/– प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/–
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विट्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई –५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
सत्य बोलो, मधुर बोलो	२
सम्पादकीय	३
क्या भारत को धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र ही रहना चाहिए	४
मृत्यू का स्वरूप	६
ऐतिहासिक मुकदमा	८
विचार शक्ति का चमत्कार	९
वैदिक अङ्गिरस ऋषि	१०
निष्काम भक्ति से मस्ती और शक्ति	११
वेद का स्पशही राज्य का गुप्तचर विभाग:	१२
स्तुति अनेक नामों से क्यों?...	१४-१६

सम्पादकीय

* क्रोध रूपी दानव से बचें *

मनु ने धर्म के दस लक्षण गिनाए हैं ....

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।

इसमे मनु महाराज ने क्रोध को भले ही सबसे अंत में रखा है किंतु यह सबसे प्रथम आता है। यदि यूं कहें कि समस्त अन्य विकारों की जड़ यह क्रोध ही है तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। क्रोध के उपजते ही हमारी धैर्य शक्ति का नाश हो जाता है फिर हमारे मस्तिष्क से क्षमा विस्मृत हो जाती है फिर इस क्रोध की प्रचण्ड अग्नि के समक्ष धी और विद्या स्वमेव लुप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार चैस खेल में राजा के मेट होते ही रानी, वजीर आदि समस्त शक्तियां भी स्वयमेव पराजित हो जाती हैं, धराशाही हो जाती हैं, उसी प्रकार क्रोध रूपी बाढ़ के आते ही समस्त ज्ञान, सामाजिक मान सम्मान, पद प्रतिष्ठता आदि गुणों पर पूरा पानी फिर जाता है।

यदि कोई व्यक्ति क्रोध के दुष्प्रभाव व दुष्परिणाम देख ले और अच्छी तरह समझ ले तो वह कभी भी क्रोध नहीं करेगा।

इससे पेप्टिक अल्सर, गैस ट्रबल, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप आदि अनेक रोग उत्तपन्न हो जाते हैं। जिस व्यक्ति पर हम क्रोध करने जा रहे होते हैं उसपर क्रोध का प्रभाव तो बाद में पड़ेगा, इससे पूर्व हमारे तन मन में आग लगती है, हमारी मांस पेशियां तन जाती हैं, इझ बढ़ जाता है, हृदय की धड़कनें तीव्र हो जाती हैं जिससे हार्ट अटैक की सम्भावना बढ़ जाती है, मस्तिष्क में भी खून का दौरा तेज़ हो जाता है जिससे ब्रेन हेमरेज का खतरा बढ़ जाता है और इसकी पराकाष्ठा से व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है।

इस क्रोध से बचने के लिए हमें राग द्वेष, मान अभिमान से दूर रहना चाहिए। अपने अंदर प्रेम वात्सल्य करुणा ममता दया अहिंसा व परोपकार के सुंदर भाव भरते रहने चाहिए। योगासन, प्राणायाम, श्वास दर्शन, सत साहित्य स्वाध्याय, सत्संग, व साधु संतों का संग आदि क्रोध रूपी राक्षस से हमारी रक्षा कर सकते हैं और हम शांति व आनंदपूर्वक अपना जीवन यापन कर सकते हैं।

सन्दीप आर्य
मो.: ९९६९ ०३७ ८३७

क्या भारत को धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र ही रहना चाहिए या धर्म सापेक्ष हिन्दु राष्ट्र (आर्य राष्ट्र) होना चाहिए (एक चिन्तन)

पं. उम्मेद सिंह विशारद

महाभारत काल के बाद **महर्षि दयानन्द सरस्वती** जी भारत की धरती पर एक देवदूत बनकर आये थे। उन्होने अपनी दूरदर्शिता विवेक शीलता से भारत वर्ष को एक वैदिक राष्ट्र आर्य राष्ट्र बनाने का संकल्प किया था। अपने अमर ग्रन्थ **सत्यार्थ प्रकाश** में लिखते है कि कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के सामान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है । भारत की गुलामीका कारण निजि स्वार्थ व व्यर्थ जाति-पांति, छुआ-छूत, वर्गवाद, राष्ट्र भक्ति की कमी को माना था।

समय की पुकार है भारत को धर्म सापेक्ष हिन्दु राष्ट्र (आर्यराष्ट्र) घोषित किया जाये

इतिहास गवाह है कि भारत ने किसी अन्य राष्ट्र पर आत्मरक्षा के अतिरिक्त कभी भी आक्रमण नही किया है । क्योंकि भारत की संस्कृती, सभ्यता अहिंसावादी रही है । तथा मानवता रक्षक रही है। तथा वेदों से बंधी है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यदि भारत को आर्य राष्ट्र या हिन्दु राष्ट्र घोषित करके संविधान बनाया जाता तो आज की परिस्थिति और ही रहती।

दुनिया मे करीब ३७० देशो से अधिक देश है और अधिकांश देश अपने धर्म की मान्यताओं से धर्म सापेक्ष राज्य है किन्तु हिन्दु राष्ट्र, नेपाल के अतिरिक्त कोई नही है वहां पर भी अनेक वाद प्रभावी हो रहा है । भारत की अदूरदर्शी या अति भाई बन्दी के कारण धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र घोषित किया है। तथा भारत के हिन्दुओं को सदैव के लिये असुरक्षित कर दिया है । हिन्दुस्तान में करोडो हिन्दु रहते है, और सभी का धर्म व संस्कृति एक ही है फिर हम इतने उदार बने है कि विधर्मीयों को अल्पसंख्यक की सुविधा दे रहे हैं और धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र बनाकर अपने ही देश में घुट-घुट कर जी रहे हैं। आर्य समाज राष्ट्रवादी संस्था है, आर्यो को चिन्तन करके अपने राष्ट्र को बचाने मे आगे आना पडेगा। २२ करोड ईसाई व मुसलमानो संख्या लगभग इस वक्त है एक शताब्दि के बाद क्या बहुमत की ओर नही जायेंगे। आज सबसे ज्यादा शक्ति व धन सुरक्षा पर व्यय हो रहा है; अपने देश के अन्दर ही राष्ट्र घातक उग्रवादियो को पनाह दे रहे है। देश काल परिस्थिति के अनुसार हमे पाश्चात्य संस्कृति जो भारत के भावी पीढी को संस्कार हीन कर रही उसके विरुद्ध तथा धर्म निर्पेक्ष कानून व व्यवस्था में परिवर्तन की ओर बढना पडेगा।

वर्ग भेद-उपजाति-एवं ऊंच नीच के विष वृक्ष को उखाड फैका जाए

हिन्दु समाज अनेक फिरकों मे व जातियों के वर्गवाद मे बटां हुआ है। सबकी अपनी-अपनी मान्यताऐं है । सभी अपने को एक दूसरे से ऊंचा समझते है । प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था थी जो समाज की एक आवश्यकता थी और एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूर्ण करते थे। गुण कर्म के अनुसार वर्ण निर्धारित होता है । यह व्यवस्था समाप्त होने से जाति व उपजातियों की उत्पत्ति अपने मनमाने ढंग से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा बनती चली गयी । जो आपसी द्वेष का कारण बनती चली गई। और हिन्दु समुदाय एक होते हुए भी अनेकता में बंटा गया।

भेदभाव का उन्मूलन आवश्यक

इस ऊंच नीच जाति-पांति की चिंगारी ने जितना हिन्दु समाज को पतन की ओर ढकेला इतना अन्यों ने नही ढकेला । हिन्दु समाज मे ऊंच नीच वर्ग भेद के कुचक्र से समाजवाद विकास की गति अविरुद्ध हुई है तथा अब भी हो रही है। इस भेदभाव को जड से समाप्त करना पडेगा। संसार मे अनेक मानव प्राणी बसते है उनमे केवल क्षेत्र विशेष का ही अन्तर पाया जाता है पर सभी मनुष्य ही कहाते है । ईश्वर द्वारा बनाई जातियां जैसे हाथी, घोडा, गधा, बैल, पशु. पक्षी आदि जो जन्म से मृत्यु तक एक शरीर में बनी रहती है। ऐसे ही मनुष्य जाति है।

पूर्वा ग्रहो मे बंध कर सत्य की उपेक्षा न करे

मनुष्यों मे पूर्व मान्यताओ व धारणाओ एवं विश्वासो चाहे व सत्य हो चाहे वे असत्य हो एक गहन संस्कार बन जाते है । मनुष्य उसके विरोध व अपवाद को अपना स्वाभीमान समझ लेता है तभी शोषित संस्कारो का जन्म होता है। एक प्रकार से मनुष्य पूर्वाग्रहो का दास हो जाता है । और प्रत्येक पक्ष मे सत्य को स्वीकारने का साहस नही कर सकता है । यही असत्य, अन्धविश्वास, जाति-पांति, वर्गभेद के पूर्वाग्रह समाज में विरोधाभास का कारण बनते है। सत्व व वैदिक धर्म के पूर्वाग्रही सुख को पाता है और असत्य व अन्धविश्वास व रूढीयों का पूर्वाग्रही दुख ही आता है।

सत्य का आधार है विवेक

सत्य का अर्थ है यर्थातता-। जो बात या कर्म वेद शास्त्रों व सृष्टिक्रमानुसार व विज्ञानानुसार उसे उसी रूप मे समझना, मानना और प्रयुक्त करना ही सत्य की साधना है। सत्य द्वारा विवेक जागता है।

हम अपनी दुर्बलता को मिटायें

हिन्दु समाज मे जाति-पांति और छूता-छूत की भावना ने बहुत ही विघटन पैदा कर दिया है। इस प्रथक्तव के कारण हिन्दु समाज अपने को हिन्दु राष्ट्र समझने मे असफल रहा है। और इसी भेदभाव के कारण विदेशी भारत को गुलाम बनाने मे सफल रहे । और हजारो वर्षों तक

भारत मे राज्य करते रहे है। समाज मे जाति-पांति, छुआ-छूत की दुर्बलता को मिटाना ही होगा। और शुद्धी एकता का पुरजोर प्रयास करना होगा।

आर्य समाज संगठन द्वारा सर्वप्रथम शुद्धी आन्दोलन चलाया गया

महर्षि दयानन्द जी समानवाद के प्रबल समर्थक थे उन्होने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश मे जाति-पाति व छुआ-छूत का कडा विरोध किया है। पश्चात स्वनाम धन्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शुद्धी आन्दोलन चलाया और लाखो हिन्दुओ विधर्मी हो रहे थे उन्हे पुन: हिन्दु धर्म मे मिलाया। वह एक युग था शुद्धी आन्दोलन का किन्तु वर्तमान में धर्म निर्पेक्ष राष्ट्र ने कानून बना दिया है कोई किसी का धर्म परिवर्तन नही कर सकता है। इससे घातक हिन्दुओ के लिये क्या हो सकता है। करोडो हिन्दु धर्म परिवर्तन करके ईसाई व मुसलमान बने हुए है। अब उनको वापिस अपने हिन्दु धर्म मे वापिस नहीं ला सकते है।

विधर्मी बने हिन्दुओं को वापिस लाने मे बडी बाधा ऊच-नीच प्रचलन

जो हिन्दु ईसाई या मुसलमान बने है वो अधिकांश हिन्दु समाज मे घोर उपेक्षा का शिकार रहे है। यहां उनको अपमान और वहां उनको सम्मान मिलता है। यहां सामाजिक तिरस्कार वहां उनको सामाजिक सत्कार। आखिर वैदिक धर्म अपनाने वाले भारत मे ही हैं। यही कारण है आज हिन्दुओं को अल्प संख्यक होने का खतरा मंडरा रहा है। स्वंय मैने देखा है उत्तराखण्ड मे एक-एक बोरी अनाज व बेटी की शादि में सहायता मिलने के लिए सतपुली गढवाला मे ईसाई बने हुए हैं। क्योंकि वे अति गरीबी के साथ-साथ स्वर्णो द्वारा शोषित भी थे। आश्चर्य होता है जब सर्वरक्षक सर्वपालक ईश्वर भेद-भाव नही करता तो मनुष्य क्यों करता है। क्या वे ईश्वर से भी बडे हो गये है।

आत्मनिवेदन

भारत के आर्य शिरोमणी व अन्य राष्ट्रवादी विचारशील मनीषियो को संगठित होकर इस उग्रवाद को जड से समाप्त करने का विचार करना अति आवश्यक हो गया है। मेरी समझ मे यदि हम यू ही चलते रहे तो कल का भारत असुरक्षित हो जायेगा। क्योंकि उग्रवाद, व राष्ट्र विरोधी ताकते हमारे अपने ही भारत मे भीतर घात कर रहे है। और पडोसी देश के ईशारो पर उग्रवाद से भारत मे अशान्ति फैला रहे है। उग्रवाद व देशद्रोह की जडे विगत तीन हजार वर्षों से जमी हुई है। बस देश काल परिस्थिति के अनुसार उसकी कार्य शैली बदल गई है। इस लेख में मेरे व्यक्तिगत विचार है, यदि आप सहमत है तो विचार कीजियेगा।

गढ निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड।
मो. ९४११५१२०१९

भारत देश बचाओ तुम

भारत के नर नारी जागो मिलकर कदम बढ़ाओ तुम।
देश द्रोही-गद्दारों से भारत देश बचाओ तुम॥
प्यारा आर्यवर्त हमारा सकल विश्व का स्वामी था।
रण कौशल में, विद्या बल में, भूमण्डल में नामी था॥
अश्वपति, हरिशचन्द्र, शिवी सें, राजा यहां निराले थे।
राम, भरत, लक्ष्मण, अंगद से, महावीर मतवाले थे॥
अर्जुन, भीम, नकुल की गाथा, गाओ, मत धबराओ तुम।
देश-द्रोही, गद्दारों से, भारत देश बचाओ तुम॥
पृथ्वीराज महाबलशाली, जन्मा था हम्मीर यहां।
आ हा अदर से योद्धा, मलखान हुआ रणधीर यहां॥
बैरीदल के संघरक, प्रताप-शिवा ये वीर यहां।
गोविन्दसिंह, बन्दा, नंलुखा की, नामी थी समसीर यहां॥
भीमसिंह, गोरा, बादल को, याद करो सुख पाओ तुम।
देश-द्रोही, गद्दारों से, भारत देश बचाओ तुम॥
पापी पाकिस्तान, चीन अब, हम पर रौब जमाते हैं।
फ्रांस, रूस अमरीका अपनी ताकत पर इहलाते हैं॥
अरब, कोरिया, और जर्मनी, बढ-बढ बात बनाते है।
बंगलादेशी, लंकावाले तनिक नहीं शर्माते हैं॥
अंगडाई ले उठो साथियों! अपना जोर दिखाओ तुम।
देश द्रोही, गद्दारों से, भारत देश बचाओ तुम॥
भारत के कुछ गन्दे नेता, निल उत्पात मचाते हैं।
ममता, माया, राहुल गांधी, भ्रष्टाचार बढ़ाते हैं॥
प्रियका, अखिलेश, मुलायम, जनता को, भडकाते हैं।
पाकिस्तान, चीन के, ये, रोजाना गाने गाते है॥
कमर तोड दो खुदगर्जो की, जग में नाम कमाओ तुम।
देश-द्रोही गद्दारों से, भारत देश बचाओ तुम॥
नरेन्द्र मोदी, देश भक्त, भारत का नेता प्यारा है।
चरित्रवान, ईमानदार, सच्चा हमदर्द हमारा है॥
वीर साहसी जागरुक, भारत का पुत्र दुलारा है।
जिस योद्धा की विकट वीरता, मान रहा जग सारा है॥
दोबारा प्रधानमंत्री, मिलकर इसे बनाओ तुम।
देश-द्रोही, गद्दारों से भारत देश बचाओ तुम॥
अबसर पर यदि चूकगए तुम, जीवन भर पछताओगे।
याद रखो, ना समझ-अनाडी जग में माने जाओगे।
साथ निभाओ मोदी जी का, भारी इज्जत पाओगे।
भारत जग का गुरू बनेगा, तुम भी मौज उडाओगे॥
''नन्दलाल'' निर्भय होकर दुनिया में धूम मचाओ तुम।
देश-द्रोही, गद्दारों से, भारत देश बचाओ तुम॥

- पं. नन्दलाल निर्भय कविरत्न पत्रकार
आर्यसदन, बदीन जनपद पलवल हरियाणा
चल भाष क्रमांक : ९८१३८४५७७४

मृत्यू का स्वरूप

वास्तविक सत्ता जीवन की है– मृत्यू अयथार्थ है

पं. उम्मेद सिंह विशारद

श्रद्धेय पाठक जी-

संसार मे सम्पूर्ण प्राणी मृत्यू के भय से ग्रसित हैं, और प्रत्येक क्षण मृत्यू से बचने का प्रयत्न करते रहते हैं। यह सभी जानते व मानते हैं कि एक दिन मेरी मृत्यू होगी, किन्तु उस सत्य को स्वीकार करने में उपेक्षा करते हैं।

हम समझते हैं कि जीवन और मृत्यू दो स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं एक तरफ जीवन खडा है दूसरी तरफ मृत्यू खडी है, परन्तु ऐसा नही हैं यथार्थ सत्ता जीवन की है, मृत्यू आगामी जीवन में प्रवेश करने का द्वार है। जीवन में मृत्यू और मृत्यू में जीवन घुला मिला है। जीना और मरना जोडा है और सदा साथ रहता है। मृत्यू के अभाव का नाम जीवन नही है क्योंकि मृत्यू के बिना जीवन रह सकता है। मृत्यू का भय तभी तक रहता है जब तक मृत्यू का साक्षात्कार नही हो जाता। जब मनुष्य मृत्यू के रहस्य को समझ जाता है तब मृत्यू का भय जाता रहता है। और उसके जीवन का दृष्टिकोण ही बदल जाता है।

रुपान्तरण का ही दूसरा नाम ''मृत्यू'' है

संसार मे किसी वस्तु का नाश नही होता, उसका रूप बदल जाता है। विज्ञान का नष्ट होने को मृत्यू कहते हैं, किन्तू शरीर के तत्वों का रुपान्तरित हो जाना है। शरीर पांच तत्वों से बना है, पृथ्वी तत्व पृथ्वी मे, जलीय तत्व जल मे आग्नेय तत्व अग्नि मे वायवीत तत्व वायु में चला जाता है, आकाश तत्व आकाश में चला जाता है। शरीर तो परमाणुओं के संयोग से बना है, इसलिए मृत्यू समय परमाणुओं का संयोग जाता रहता है, परमाणु नष्ट नही होतें और चेतना परमाणुओं के संयोग से नही बनी। मृत्यू के समय चेतना आत्मा का होता हैं जैसे शरीर का रूपान्तरण होता है वैसे आत्मा का रूपान्तरण होता है, एक शरीर छोड कर दूसरा शरीर धारण कर लेता है। शरीर के रूपान्तरण को मृत्यू कहते हैं और आत्मा के रूपान्तरण को पुनर्जन्म कहा जाता है। आत्मा का नाश नही होता, आत्मा सिर्फ शरीर बदलता है। मानो पुराने चोले को उतार कर नया चोला धारण कर लेता है। वास्तव में आत्मा के लिए मृत्यू की कोई सत्ता नही है, आत्मा के लिए मृत्यू आयथार्थ है।

मृत्यू का स्वरुप

जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है, परन्तु यह किसी को पता नही है कि मृत्यू क्या हैं हमारा सम्पूर्ण जीवन मृत्यू को सत्य मान कर बना हुआ है और मृत्यू का भय हमारे सभी कार्यो मे सन्निहित है। हम खाते है, पानी पीते है, परिवार बनाते है कि हमें कौन सम्भालेगा, हम जीवन का हर कार्य मृत्यू से बचने के लिये करते हैं। किसी ने सत्य ही कहा है कि यह आश्चर्य की बात नही है कि मनुष्य जिन्दा है, आश्चर्य तो इस बात का है कि पग-पग पर मृत्यू का शिकंजा होने पर भी कैसे जी रहा है। हम कहते है बालक ने जन्म ले लिया हैं किन्तु हम भौतिक चका चौंध मे भूल जाते हैं कि जन्म लेते ही वह मृत्यू की तरफ कदम बढ़ाने लगता है। वैदिक विचार धारा का कहना है कि मृत्यू का अस्तित्व ही नही है यह एक मिथ्या विचार है, इसके वास्तिविक स्वरूप समझ लेने से मृत्यू स्वयं मिट जाती है, क्योंकि मृत्यू शरीर की होती है आत्मा कही नही होती। आत्मा की शरीर में भिन्न स्वतन्त्र सत्ता है जन्म शरीर को होता है तो मृत्यू भी शरीर की होती है। आत्मा शरीर को सिर्फ धारण करता हैं शरीर का मरण जन्म से ही शुरु हो जाता है, परन्तु शरीर के मरण के पीछे एक सत्ता बनी रहती है जो इन मरती हुई कोशिकाओं में एक सूत्रता बनाए रखती है। शरीर मरता है, आत्मा नहीं मरती, शरीर बूढा व रोगी होता है आत्मा बूढा व रोगी नहीं होता।

शरीर की मृत्यू प्रतिक्षण होती रहती है

हमारा शरीर कोशिकाओं से बना हुआ है, कोशिकाएं हर समय टूटती व बनती रहती है। बाल है नख है ये सब शरीर के मृत भाग ही तो है। शरीर के परमाणु बदलते बदलते सात साल में साराशरीर बदल जाता है। हमरा समपूर्ण जीवन में शरीर नौ या दस बार बदल चुका होता हैं मृत्यू के अन्तिम क्षण में नई कोशिकायें बनना सर्वथा बन्द हो जाती है, पुरानी सब टूट जाती है और नई बनती नही इसी को हम मृत्यू कहते हैं लोग कहते हैं कि शरीर नष्ट होने के साथ वह चेतन शक्ति भी नष्ट हो जाती है, यह एक अनहोनी बात है। हर वस्तु किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये पैदा हुई है और उस लक्ष्य की पूर्ति के लिये क्रियाशील है। शरीर छूट जाय तो आत्मा दूसरे शरीर का निमार्ण कर लेता है-मृत्यू शरीर की होती है आत्मा की नही रूपान्तरण होता है।

वास्तविक सत्ता जीवन की है– मृत्यू अयथार्थ है

मृत्यू एक भ्रम है कभी-कभी जो होता ही नही वह प्रचलित हो जाता है। भूत से सब डरते है परन्तु भूत क्या है अगर भूत से डरने वाला जान जाये कि भूत एक भ्रम है तो क्या वह भूत से डरेगा। क्योंकि भूत की कोई सत्ता नही है हम उसकी कल्पना कर लेते हैं। तभी उससे डर लगता हैं मृत्यू का स्वरूप भी ऐसा ही हैं आत्मा के लिये मृत्यू है ही नहीं उसकी कोई सत्ता नही हैं मृत्यू छाया के समान है। जैसे भूत का कोई अस्तित्व नही है वैसे छाया का भी नही है। छाया की स्वतन्त्र सत्ता नही है, प्रकाश के रूक जाने का नाम छाया हैं। छाया प्राणी का

पीछा करती है, मृत्यू से भय खाना छाया से डर जाने के सामान है। मृत्यू अन्धेरा है, अन्धरे की स्वतन्त्रता सत्ता नही है। स्वतन्त्र सत्ता प्रकाश की है। जैसे कारखाने मे बैटरी खत्म होने के बाद मालिक नई बैटरी ले लेता है, कारीगर का काम नही रूकता है कारीगर नई बैटरी से काम लेने लगता है। इसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोडकर जब नये शरीर में आता है तब बच्चे का शरीर ग्रहण करता है जो नई बैटरी की तरह शक्ति से भरपूर और तरोताजा होता है।

शरीर का मालिक आत्मा है

जो पदार्थ व वस्तु अपने लिये नही है दूसरों को भोग के लिये बनी है। मकान अपने लिये नही होता, मालिक मकान के लिये होता है इसी प्रकार कपडा अपने लिये नही शरीर के लिये, "शरीर भी एक पदार्थ है, यह भी आत्मा के लिये है शरीर मे कोई सत्ता है जो उसका उपयोग करती है" वह सत्ता है जो उसका उपयोग करती है" वह सत्ता अदृश्य है। अत: हम इस परिणाम पर पहुच जाते हैं कि शरीर का मालिक कोई अशरीरी अदृश्य सत्ता है।

मृत्यू के समय स्थिति

मृत्यू के समय आत्मा इन्द्रियों को अन्दर खीच लेती है। सभी इन्द्रिंया अपना कार्य बन्द कर देती है। समय हृदय के अग्र प्रदेश मे हितानाम की नाडियां हृदय से ऊपर उठ जाती है और हृदय का अग्र भाग आत्मा की ज्योति से प्रकाशित हो जाता है, और इसी के साथ आत्मा चक्षु से मूर्धा से या शरीर के किसी अन्य प्रदेश से निष्क्रमण कर देता है और इन्द्रिंया भी पीछे-पीछे निकलने लगती है। जीव मरते समय सविज्ञान ही जाता है जीवन के सारे खेल इसके सामने आ जाते है और विध्या पूर्व प्रजा भी साथ ले जाते हैं जैसे तृण जलाशुण्डी तिनके के अन्त पर पहुँच कर दूसरे तिनके के सहारे को पडक कर अपनी ओर खेंच लेता है। इसी प्रकार आत्मा भी इस शरीर को छोड कर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाती है। और वाणी अग्नि मे प्राण वायु मे चक्षु आदित्य में, मन चन्द्रमा में श्रोत्र दिशाओं में शरीर पृथ्वी में शरीवरर्ती आकाश ब्रह्ममान्ड में लोभ ओषधी में केश वनस्पतियों में शोषित और रेत जल में लीन हो जाते है। कार्य अपने कारण में और पिन्ड ब्रहमान्ड मे चल देता है। जीव का आधार केवल कर्म ही बचते है और वह क्रमानुसार जन्म लेता है।

नोट : कुछ शारांस इस लेख मे वैदिक विचार धारा का वैज्ञानिक आधार (डा. सत्यकेतु विद्यालंकार से भी लिया गया है।)

वैदिक प्रचारक
गढ़ निवास मोहकमपुर, देहरादून उत्तराखण्ड।
मो. ९४११५१२०१९/९५५७६४१८००

प्रो. महावीर राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित

०४ अप्रैल, भारत की राजधानी देहली में उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार के पूर्व कुलपति एवं वर्तमान में योगर्षि स्वामी रामदेवजी के विश्व प्रसिद्ध पतंजलि विश्वविद्यालय के प्रति,-कुलपति, अर्न्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैदिक विद्वान् प्रो. महावीर अग्रवाल, राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किये गये। महामहिम राष्ट्रपति की ओर से भारतीय गणराज्य के महामहिम उपराष्ट्रपति श्रीमान् वैंकया नायडू ने यह पुरस्कार एवं सम्मान प्रदान किया।

संस्कृत जगत् में अत्यन्त लोकप्रिय एवं सम्मनित प्रो. महावीर अनेक गरिमापूर्ण पदों को विभूषित कर चुके हैं। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष, प्राच्यविद्या संकायाध्यक्ष, कुलसचिव, आचार्य एवं उपकुलपति आदि दायित्त्वों का कुशलतापूर्वक निर्वाहण करने वाले डॉ. महावीर, उत्तराखण्ड संस्कृत अकादमी के उपाध्यक्ष के रूप में भी संस्कृत सेवा कर चुके हैं।

आपके सैकड़ों शोध पत्र राष्ट्रिय, अर्न्तराष्ट्रीय शोध पात्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अनेक राष्ट्रीय एवं विश्वास्तरीय शोध सम्मेलनों का सफल आयोजन करते हुए आपने देश, विदेश की अनेक शोध संगोष्ठियों में मुख्य अतिथि, अध्यक्ष अथवा मुख्य वक्ता के रूप में सहभागिता की है। आपने संस्कृत के विकास, विस्तार एवं उत्थान के लिए अमेरिका, इंग्लैण्ड, बैंकाक, नेपाल आदि देशों की यात्राएं की है।

प्रो. अग्रवाल के निर्देशन में ७० शोधार्थी शोधोपाधि प्राप्त कर चुके हैं। शोध की सर्वोच्च डी-लिट् उपाधि से अलंकृत डॉ. महावीर की दूरदर्शन के आस्था, संस्कार, वैदिक गुरूकुलम् आदि चैनलों पर सैकड़ों वार्ताएं प्रसारित आपकी वार्ताओं को अत्यन्त आदर पूर्वक सुना जाता है। आपकी सौ से अधिक संस्कृत वार्त्ताएं आकाशवाणी से प्रसारित हुई है।

प्रो. महावीर को राष्ट्रपति सम्मान के अतिरिक्त, दिल्ली संस्कृत अकादमी से महर्षि वाल्मीकि पुरस्कार, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान से विशिष्ट संस्कृत सेवा सम्मान, वेद वेदाङ्ग पुरस्कार, आर्य विभूषण पुरस्कार, समन्वय पुरस्कार पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय पुरस्कार आदि के अतिरिक्त अनेक राष्ट्रीय सांस्कृतिक, साहित्यिक संस्थाओं ने विभिन्न पुरस्कारों से सम्मनित किया है। सितम्बर १९७२ से वर्त्तमान समय तक आपकी अध्यापन, लेखन, प्रकाशन एवं शोध यात्रा निरन्तर गतिमान है।

ऐसे मनीषी विद्वान् को राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मनित किये जाने पर संस्कृत जगत् में हर्ष की लहर व्याप्त है। योग ऋषि स्वामी रामदेव जी, आचार्य बालकृष्ण जी, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, कुलसचिव श्री गिरीश कु मार अवस्थी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. विनोद कुमार, कुलसचिव प्रो. भोला झा आदि महानुभावों ने हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं प्रदान की हैं।

ऐतिहासिक मुकदमा

अवधेश कुमार चतुर्वेदी

काफी तैयारियों के बाद ब्रिटिश पुलिस ने मदनलाल ढींगरा को १० जुलाई १९०९ को लंदन के वेस्ट मिनिस्टर स्थित 'औल्ड वैली कोर्ट' में पेश किया। उस समय तक मदनलाल ढींगरा सारे संसार में चर्चित हो चुके थे। इसलिए सारे लंदन के भारतवासी व लंदन के भारत विरोधी नागरिक भी उस व्यक्ति को देखने के बहुत इच्छुक थे, जिसने एक उच्च पदस्थ अफसर को भरी हुई सभा में मौत के घाट उतार दिया था।

मदनलाल ढींगरा, ब्रिक्स्टन कारागारमें भी उतने ही प्रसन्नचित थे जितने अपने घर १०८, लेदी बेरी रोड पर रहते थे। उन्हें मां-बाप, पत्नी, एकमात्र पुत्र और सगे भाइयों की न कोई परवाह थी ना की कोई मोह ममता थी। उन्हें चिन्ता थी तो अपने प्यारे देश हिन्दुस्तान की, जिसकी धरती पर उस समय अंग्रेजों का राज्य था।

१० जुलाई १९०९ को ओल्ड वैली की अदालत में भी मदनलाल ढींगरा अपनी मस्त चाल चलते हुए, शेर जैसी शान से अदालत में दाखिल हो गए। उनके अदालत में पहुंचते ही शोर मच गया। अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने बड़ी मुश्किल से शोरगुल कम कराया और मदनरलाल ढींगरा से पूछा. ''क्या उन्हें अपनी सफाई में कुछ कहना है। मदनलाल ढींगरा ने अपनी जेब से एक वक्तव्य निकालकर दिखलाते हुए कहा मैं अपने इस कार्य को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए अवश्य मुझे कुछ कहना है। मैं इसे उचित नहीं मानता हूं कि किसी अंग्रेज अदालत को यह अधिकार हो कि मुझे सजा दे, या मुझे जेल में रखें या मृत्युदण्ड दें। यही कारण है कि मैंने अपने बचाव के लिए अब तक कोई वकील नहीं किया है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि किसी भी अंग्रेज को जब राष्ट्र-भक्त माना जाएगा यदि वह उन जर्मनों के खिलाफ लड़े जो कि उसके देश पर अपना अधिकार करने आए हों। यह बात विशेष रूप से मेरे इस मुकदमे में न्यायोचित है कि मैं भी अंग्रेजों के खिलाफ संघर्ष करूं। मैं अंग्रेजों को अपने देश के तीस करोड़ आदमियों का खूनी मानता हूं। मेरा आशय ५० वर्षों के उनके काले कारनामों से है। यही नहीं, वे प्रतिवर्ष १० करोड़ पौण्ड का धन भारत से अपने देश इंग्लैंड में ले जाते हैं। मै उनको अपने देशवासियों को सताने और अनेक को मृत्यु दण्ड देने का जिम्मेदार भी ठहराता हूं। वे हमारे देश में जाकर वहीं कार्य करते हैं जो यहां रहने वाले अंग्रेज उनको सलाह देते हैं। एक अंग्रेज जो हिन्दुस्तान में १०० पौंड प्रतिमाह वेतन पाता है उनकी उसकी इस तनख्वाह का सीधा अर्थ यह है कि वह मेरे गरीब देश के एक हजार आदमियों का खाना छीनकर उन्हें मौत के मुंह में धकेलता है। मेरे एक हजार देशवासी उस १०० पौंड से एक माह तक बहुत आराम की ज्दिगी जी सकते हैं जिसे ये अंग्रेज अपने ऐसो आराम और ऐयासी में खतम कर देते हैं।

जिस प्रकार जर्मनों को यह अधिकार नहीं है कि वह देश पर अपना कब्जा करें, उसी प्रकार अंग्रेज जाति को भी यह अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रभुत्व मेरे देश भारत पर जमाएं और यह भी पूर्णत: न्यायोजित है कि हमारे पवित्र देश को जो अंग्रेज अपवित्र करना चाहते हैं उनको भी मौत के घाट उतारा जाए। मैंने अंग्रेजों को शोषित मानवता अर्थात कांगो आदि देशों की जनता के रक्षक होनेका दावा करते देखा है तो मुझे हैरत होती है। क्योंकि मुझे मालूम है कि वे अपनी मिथ्या शक्ति का प्रदर्शन और प्रचार का घृणित मुखौटा पहने हुए हैं। यही नहीं, हिन्दुस्तान में वह प्रत्येक वर्ष २० लाख आदमियों की हत्या करते हैं और स्त्रियों का अपमान करते हैं। उनका यह बर्बर, नृशंस अत्याचार वहां बढ़ता ही जा रहा है। यदि यह देश जर्मनों के कब्जे में आ जाए और कोई अंग्रेज लोग अपने लंदन शहर की गलियों में विजेता के रूप में घूमते जर्मनों को देखकर गुस्से में भर जाए और उनमें से एक दो का खून कर दे, तो वह अंग्रेज, इस देश का बहुत बड़ा देशभक्त स्वीकार किया जाएगा। इसी प्रकार मैं भी एक बहुत बड़ा देशभक्त हूं. जो कि अपनी मातृभूमि के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर रहा हूं। इससे अधिक मुझे जो कुछ कहना है वह मेरे उस वक्तव्य में है जो मैं अदालत में दे चुका हूं। मैं यह मांग रहा हूं या ऐसी ही कोई मदद चाहता हूं। मैं तो यही चाहता हूं कि मुझे यह अंग्रेज अदालत मौत की सजा दे ताकि मेरे देशवासियों में विद्रोह की आग और भी तेजी से भड़क उठे।''

मदनलाल ढींगरा का यह बयान उनके विचारों के अनुरूप था। सावरकर समेत अनेक क्रांतिकारियों व देशभक्तों को उनसे इसी प्रकार के बयान की आशा थी। पर साधारण नागरिकों और अंग्रेज नागरिकों को यह बयान चौकाने वाला लगा। कुछ उदारवादी अंग्रेज मदनलाल ढींगरा के इस बयान से बहुत प्रभावित हुए और ऐसे अंग्रेजों का एक अलग वर्ग बन गया जो मदनलाल को किसी सजा का हकदार नहीं मानते थे।

इस मुकदमे को सुनने वाले जज ने इस मुकदमे का फैसला लगभग बीस मिनट से भी कम समय में ही दे दिया और उसी दिन फांसी पर चढ़ाने इस फैसले के साथ ही मदनलाल ढींगरा को फांसी पर चढ़ाने की तारीख १७ अगस्त १९०९ भी तय कर दी गई जो कि न्याय के इतिहास में एक अनोखा कदम बतलाया जाएगा।

आज तक किसी अदालत ने किसी भी अपराधी की फांसी लगने की तारीख खुद मुकर्रर नहीं की है। क्योंकि किसी भी अदालत का काम फांसी की सजा को क्रियान्वित करना नहीं है क्योंकि फांसी देने का काम प्रशासन का है। वही फांसी देने की व्यवस्था करती है और वही फांसी की तारीख मुकर्रर करता है। अदालत का काम तो मात्र फांसी देना है, क्रियान्वित करने का काम सरकार का है।

पर अन्याय के नाम पर न्याय का ढोंग रचाने वाली सरकार शायद अपने द्वारा निर्धारित नीतियों व प्रशासनिक कार्यो की सीमा को भूल गई थीं या उसने मदनलाल ढींगरा जैसे अमर शहीद की हिम्मत से घबराकर ही साम-दाम-दंड-भेद अपने हाथ में ले लिया था।

मदनलाल ढ़ींगरा के इस मुकदमें न्याय के बुनियादी सिद्धातों तक को ताक पर रख दिया था। मदनलाल ढींगरा का बचाव करने वाला कोई वकील नहीं था। साथ ही उनसे सिवाय सफाई मांगने के और कोई मौका न्याय के नाम पर उन्हें दिया। न्यायधीश द्वारा फांसी दिए जाने का फैसला

सुनाए जाने के तत्काल बाद ही, मदनलाल ढ़ींगरा ने ऊंचे स्वर में कहा, ''मुझे इस बात का बहुत गर्व है कि अपने देश की खातिर प्राण उत्सर्ग कर रहा हूँ। लेकिन याद रखो- जल्द ही मेरा देश आजाद होगा।''

मदनलाल ढ़ींगरा को फांसी दिए जाने की खबर भी सर कर्जन वामली की मौत की तरह आग की भाँति पूरी दुनिया में फैल गई।

जगह-जगह इस सजा को अन्याय के रूप में लिया जा रहा था। मदनलाल ढ़ींगरा ने जो लिखित बयान पुलिस को दिया था उसे ब्रिटिश पुलिस छिप गई थी। पर मदनलाल ढ़ींगरा चाहते थे कि उनका यह बयान किसी तरह आम जनता के सामने आए।

सावरकर जी के पास इस बयान की प्रतिलिपि थी। उन्होंने क्रांतिकारी ज्ञानचंद वर्मा को इस गुप्त बयान की प्रतिलिपि देकर गुप्त रूप से रातों-रात पेरिस रवाना कर दिया ताकि सारे विश्व के अखबारों में यह बयान आ जाए। जर्मन, इटली, अमेरीका जैसे देशों और लंदन के प्रमुख अखबारों 'डेली न्यूज' ने यह बयान बड़े ही महत्त्वपूर्ण रूप से छापा जो सावरकर के एक अंग्रेज मित्र के माध्यम से ही प्रकाशित हो पाया। १६ अगस्त तक यह बयान सारे अखबारों में आ गया।

बयान इस प्रकार था- ''यह सत्य है कि मैंने एक अंग्रेज का खून बहाने का प्रयत्न किया है। अंग्रेज भारत का जो प्रताड़न कर रहे हैं यह उसका छोटा सा बदला है। अपने इस कृत्य के लिए मैं अकेला जिम्मेदार हूँ। मेरा देश परतंत्र है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए हमें बहुत ही कठोर संघर्ष करना पड़ेगा। हमें हथियार रखने की अनुमति नहीं है। यहां बंदूके नहीं रख सकते हैं इस कारण ही मैंने पिस्तौल से हमला किया था।

मैं एक हिन्दू हूँ। अपने राष्ट्र के अपमान को अपने देवता का अपमान मानता हूँ। मैं कोई चतुर नहीं हूँ ना ही बहुत शक्तिमान हूँ। अपने लहू के अतिरिक्त मैं अपनी भारत माता को क्या समर्पित कर सकता हूँ। इस कारण मातृभुमि की सेवा ही श्रीराम की सेवा है, श्रीकृष्ण की सेवा भी मेरे लिए भारत माता की ही सेवा है। इसके लिए ही मै अपने प्राण न्यौछावर कर रहा हूं। मुझे इस बात पर बहुत ज्यादा गर्व है। मेरी यही चाह है कि जब तक भारतमाता स्वतन्त्र नहीं हो जाती मेरा जन्म बार-बार भारत की धरती पर हो ताकि मैं बार-बार अपने प्राण भारत के लिए बलिदान कर सकूं। ईश्वर मेरी चाह पूरी करे। वन्दे मातरम्।''

इस बयान ने बहुत ही जादा तहलका मचा दिया। कई अंग्रेज व्यक्तियों ने भी मदनलाल ढ़ींगरा के इस कार्य की पूरी तरह सराहना की।

पर सरकार अपने दृढ़ निश्चय पर अटल थी। उसने पहले ही मदनलाल ढ़ींगरा की कोर्ट द्वारा फांसी की तारीख १७ अगस्त १९०९ को स्वीकार कर लिया था।

सन् १९३१ में लाहौर स्पेशल ट्रिब्यूनल ने एक और क्रांतिकारी अमर शहीद भगतसिंह की फांसी की सजा देने के साथ ही फांसी की तारीख भी तय कर दी थी। क्रांति की जैसी परम्परा मदन ने कायम की थी वैसे ही नियति ने उनकी फांसी की तारीख तय करने वाली बात को भी एक अजीब परम्परा का उदाहरण बना दिया था।

विचार शक्ति का चमत्कार

(सद्‌भावना और परोपकार)

विचारों से शक्तियाँ संचालित होती हैं एवं विचारों से विषय भी संचालित होते हैं। हमारा दिमाग हमेशा विचारो से भरा रहता है तथा एक दिन में न जाने कितने विचार आते-जाते रहते हैं। और इन्ही विचारों की दिशा में हमारा जीवन भी चलने लगता है। ज्यादातर सामने वाले के प्रति ना पसंदगीका भाव हमारे विचारों में रहता है। भावना से कंपन, कंपन से शक्ति और शक्ति से संसार या संकल्प से सृजन या सृष्टि यह कहावत यथार्थ में कार्यरुप होते दिखाई पड़ती है। शक्तियों का उदाहरण यदि देखें तो वे हैं, इच्छाशक्ति संकल्प शक्ति, विश्वास, ज्ञान, प्रेम, अभय प्रसन्नता इत्यादि और ये सारी शक्तियाँ विचार शक्ति से संचालित होती हैं। साधारणतया हमें इन शक्तियों का बारीकी से निरिक्षण करना चाहिए कि कही जाने अनजाने में यह शक्तियां विपरित दिशा में तो नहीं जा रही। और इस पूरे कम में हम कही स्व से ही दूर तो नहीं जा रहे इस बात का ध्यान रखना चाहिए। यह बात पूरे जीवन का निचोड़ है। जो व्यक्ति स्व से नही घबराता है वह जीवन में नई उंचाईयों को प्राप्त करता है। सामने वाले के प्रति नापसंदगी का भाव दुर्भावना को जन्म देता है। और यही दुर्भावना हमें जीवन में आगे बढ़ने से रोकती है। यह सब जाने अनजाने में होता है जिसका हमें बारिकी से निरिक्षण करना होता है। और यदि यही दुंर्भावना, सद् भावना में परिवर्तित हो जाए तो यकीन मानिये यह किसी परोपकार से कम नही है। दान धर्म करना, जरूरत मंदो को सहायता पहुंचाना य इसकी परिणीती है। एक साधे सब सधता है। सद् भावना हरेक की प्रति जैसे सामने वाले की प्रति, इश्वर के प्रति हर पदार्थ के प्रति स्व के प्रति रखनी होती है। केवल इसी से हमारे जीवन में आमूल चूल परिवर्तन हो सकता है। इसी विचार को अगले अंक में विस्तार देने का प्रयत्न करेंगे। सधन्यवाद।

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी।

ईश्वर तू महान है

ईश्वर तू महान है, सबका रखता ध्यान है।
तेरा ही एक आसरा, सब सुखों का खान है॥
पृथ्वी और आकाश बनाए, नदी और नाले खूब सजाये।
सूरज चन्दा को चमकाए, जो देते हमको प्राण है ईश्वर तू... ॥१॥
पेड़ और पौधे उगाये तुमने, फल और फूल लगाए तुमने।
मीठे रसों से सरसाये तुमने, जो देते हमको जीवन दान है॥ ईश्वर तू.... ॥२॥
जंगल-पर्वत बनाए तुमने, जल और वायु बहाए तुमने।
चारों वेदों को रचाये तुमने, दिया हमको सच्चा ज्ञान है॥ ईश्वर तू... ॥३॥
सच्चे मन से ध्याया तुमको, तन और मन लगाया तुमको।
हर वख्त ह्दय में पाया तुमको, 'खुशहाल' बन किया अमृत पान है॥
ईश्वर तू... ॥४॥

खुशहालचन्द्र आर्य
कोलकात्ता

वैदिक अङ्गिरस ऋषि

आचार्य रामनाथ वेदालंकार

इन्द्रेण युजा नि:सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्त्रं मे ददतो अष्टकर्ण्य: श्रवो देवेष्वक्रत ।।

- ऋ. १०.६२.७

''राष्ट्रयज्ञ के ऋत्विज् मेधावी वे अङ्गिरस ऋषिगण राष्ट्रयज्ञ के ब्रह्मा राजा (इन्द्र) को सहायक पाकर पणियों द्वारा कैद किये हुए गौओं और अश्वों के समूह को छुड़ा लाते हैं तथा अष्टकर्णी गौएँ जनता को प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार देवजनों में वे कीर्ति को प्राप्त करते हैं।''

जब राष्ट्र गो-हीन और अश्वहीन हो जाता है, शत्रुओं द्वारा उसकी सम्पत्ति अपहृत कर ली जाती है, तब अङ्गिरस् ऋषि ही उस सम्पत्ति को वापिस लाते हैं। उदाहरणार्थ, अपने ही देश को लें। यहाँ किसी समय दुधारू गौएँ होती थीं, घी-दूध-दही की इस देश में नदियाँ बहती थीं। आज अच्छी नस्ल की गौएँ दुर्लभ हैं। किसी समय हवा से बातें करने वाले, सधे हुए, उत्कृष्ट कोटि के घोड़े होते थे। आज वैसे घोडे भी दुर्लभ हैं। देश के अङ्गिरस् ऋषियों के गोरक्षा और पशुरक्षा के अभियान से ही देश अपनी पुरानी स्थिति को पा सकता है, किन्तु देश के इन्द्र, अर्थात् राजा या सरकार का साहाय्य मिलना भी आवश्यक है।

पर वेद के गौ और अश्व केवल गाय और घोड़ों के ही वाची नहीं हैं। गौ का अर्थ है गव्य पदार्थ घी, दूध, दही आदि, जो कि समग्र भोज्य सम्पत्ति का प्रतीक है; अश्व उपलक्षण है इतर उपयोग में आने वाली वस्तुओं का। गौ के अर्थ वाणी, भूमि, ज्ञानकिरण आदि भी होते हैं। शत्रु ने हम पर अधिकार करके हमारी वाणी की स्वतन्त्रता को हर लिया है, या वेदवाणियाँ अन्धकारावृत हो गयी हैं, या शत्रु ने हमारी भूमियों को हस्तगत करके सीमा पर अपनी रक्षक-सेना नियुक्त कर दी है, जिसे उन्हें पुन: पाना कठिन हो गया है, अथवा ज्ञानकिरणें अज्ञानरूप पर्वत की गुफाओं में बन्द हो गयी हैं; इन सभी स्थितियों में राष्ट्र के अङ्गिरस् ऋषि आगे आते हैं और उनका उद्धार करते हैं। अश्व बल का भी प्रतीक है। जब राष्ट्र का बल छिन जाता है, राष्ट्रवासी निर्बल हो जाते हैं, तब भी अङ्गिरस् ऋषि उठकर निर्मलों में बल का सञ्चार करते हैं। अश्व शरीर की इन्द्रियों का भी नाम है। जैसे घोड़े घुड़साल में रहते हैं, वैसे ही इन्द्रियाँ शरीर में अवस्थित हैं। कभी-कभी इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को कामक्रोधादि रिपु घेर कर अपनी पर्वतगुफा में बन्द कर लेते हैं, जिससे ये सत्कर्मों में प्रवृत नहीं हो पातीं। अङ्गिरस ऋषि सदुपदेश द्वारा मानवों की इन इन्द्रियों को भी उन्मुक्त करा देते हैं।

अङ्गिरस् ऋषि जिन गौओं का उद्धार करते हैं, वे अष्टकर्णी गौएँ है। साधारण गौओं के तो दो ही कान होते हैं, पर ये आठ कानों वाली है। वेदवाक्रूपी गौ अष्टकर्णी होती है, क्योंकि उसके गायत्री, अनुष्टुप् आदि कई छन्दों में प्रत्येक पाद में आठ- आठ अक्षर होते हैं। सामान्य वाणी भी अष्टकर्णी होती है, क्योंकि सुबन्त शब्दों की सम्बोधन को मिलाकर आठ कड़ियाँ हो जाती हैं। अन्यत्र वाणी को अष्टापदी कहा भी है। भूमिरूपी गौ भी अष्टकर्णी है, क्योंकि वह चार वेदों और चार उपवेदों में व्याप्त है अङ्गिरस् ऋषियों की कीर्ति इन गौओं का उद्धार करने के कारण चारों ओर फैल जाती है।

ऋग्वेद के १० मे मण्डल का ६२वाँ सूक्त, जिसके तीन मन्त्रों की अभी व्याख्या की गयी है, वैदिक अङ्गिरस् ऋषियों के प्रति भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने वाला सुन्दर सूक्त है। इसका ऋषि है **नाभा नेदिष्ठ।** इस सूक्त तथा इससे पूर्ववर्ती ६१ वें सूक्त दोनों पर ऐतरेय ब्राह्मण में निम्नलिखित कथानक आता है- ''मनुपुत्र नाभानेदिष्ठ आचार्यकुल में ब्रह्मचर्यवास कर रहा था। उसके पीछे उसके भाइयों ने दायभाग का बँटवारा कर लिया, उसे कुछ नहीं दिया। नाभानेदिष्ठ को जब यह पता लगा, उसने आकर पिता से कहा कि मुझे दायभाग से वञ्चित क्यों रखा? पिता ने कहा कि यह भाग तुझे न सही न मिला; अङ्गिरस् ऋषि स्वर्गप्राप्ति के लिए यज्ञ कर रहे हैं, उन्होंने षष्ठाह: पर्यन्त तो यज्ञ कर लिया है, आगे भूल गये हैं, तू जाकर उन्हें इन दोनों सूक्तों का शंसन करवा दे; वे स्वर्ग जाते हुए तुझे सहस्त्र गौएँ दे जायेंगे। पिता से प्रेरित नाभानेदिष्ठ ने ऐसा ही किया तथा एक सहस्त्र गौएँ पा लीं। इतने में ही किसी कृष्णशवासी पुरुष का रूप धारण किये हुए रुद्र ने आकर कहा कि इन गौओं को तू कहाँ ले जा रहा है? यह तो यज्ञशेष होने से रुद्र का भाग होता है, अत: मेरा है। जब नाभानेदिष्ठ ने कहा कि यह भाग तो स्वयं अङ्गिरसों ने मुझे दिया है, तब वह पुरुष बोला कि तू अपने पिता से ही जाकर पूछ ले, वे ही इसका निर्णय कर देंगे। पिता ने भी कहा कि यह भाग तो रुद्र का ही है। पुत्र ने आकर पिता का निर्णय पुरुष को सुना दिया। उसके सत्य कथन से प्रसन्न होकर उस पुरुष ने वे एक सहस्त्र गौएँ उसे ही दे दीं।

वस्तुत: अङ्गिरस्-गण गौएँ प्रदान करते हैं, इस मन्त्रोक्त तथ्य को लेकर ही यह कथा रची गयी है। ६१ वें सूक्त के ४थे मन्त्र में केवल नाभा नाम है। भा का अर्थ दीप्ति है, 'अभा' का अर्थ हुआ 'दीप्ति का अभाव, 'न अभा नाभा' इस विग्रह से नाभा का अर्थ हुआ दीप्ति के अभाव का अभाव, अर्थात् अतिशयदीप्तियुक्तता, उसके नेदिष्ठ, अर्थात् अति समीप जो होना चाहता है वह नाभानेदिष्ठ है। ऐसा मनुष्य अङ्गिरसों की स्तुति कर रहा है तथा उनसे प्रार्थना कर रहा है कि तुम मानवजाति का उद्धार करो। सूक्त के प्रथम चार मन्त्र यहाँ दिये जा रहे हैं।

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमाशत।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगुभ्णीत मानवं सुमेधस: ।।१।।

'' जो यज्ञ और दक्षिणा से संयुक्त हुए हैं, जिन्होंने इन्द्र का सख्य और अमृतत्व प्राप्त कर लिया है, ऐसे तुमको हे अङ्गिरसो, कल्याण

(शेष पृष्ठ-१२ पर देखें)

निष्काम भक्ति से मस्ती और शक्ति

महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

''कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत होने पर उसके चित्त में यह भाव प्रकट हुआ कि और कहीं नहीं जाऊंगा। भिक्षा मांगने से तो छुटकारा मिल ही गया है। गृहस्थ का निर्वाह भी हो ही रहा हैं। क्यों न शेष समय अपने लिए गायत्री का जाप करूं? बस, फिर क्या था? सारा-सारा दिन वहीं घाट पर जप में उन्मत रहने लगा। उसकी कोई कामना तो थी ही नहीं, वह ईश्वर के अर्पण ही करता रहा। कुछ दिन बीते तो बीरबल ने उसे देखा कि उसके मुखारविन्द पर ब्रह्मज्ञान की निर्मल ज्योति आने लगी है। होंठों से मुस्कराहट और मुख से प्रसन्नता प्रतीत होती है।

बीरबल ने कहा महाराज ! एक माला का जप मेरे लिए कर दिया करो, मैं एक हजार रूपया दक्षिणा आपको दिया करूंगा।

ब्राह्मण ने स्वीकार कर लिया और उस दिन से एक माला का जप बीरबल के लिए करने लगा। बाकी सारा दिन अपने लिए। एक दिन जप करते-उसके हृदय में प्रकाश हुआ 'भोले ब्राह्मण !, यह तू क्या करता है? गायत्री जैसे अनमोल रत्न यूं बेचे जाने के लिये हैं?'

यह ज्ञान प्रकट होते ही वह कृतकृत्य हो गया और निष्काम-भाव से जप में तन्मय रहने लगा। दूर के लोग उसके दर्शनों को आने लगे। उसे प्रतिदिन देखते थे अब उनको निश्चय हो गया कि यह तो सच्चा ईश्वरभक्त है। बहुत से भक्त उसके घर ही सीधा, मिठाई, फल आदि अपने आप पहुंचाने लगे। अब इस ब्राह्मण को इतनी मस्ती हुई कि ईश्वरभक्ति (गायत्री जप और ध्यान) के बिना उसे कोई चिन्ता ही न रही।

''जब कई दिन तक ब्राह्मण न पहुंचा तो बीरबल स्वयं उसकी खोज में यमुना तट पर जा निकला। क्या देखता है कि ब्राह्मण समाधि में मग्न हुआ जप कर रहा है। श्रद्धालु स्नान करके उसके सामने यथाशक्ति भेंट पूजा चढ़ाते हैं परन्तु वह निर्द्वन्द्व बैठा हुआ, अपने जप में मग्न है। ईश्वरपरायणता का दिव्य प्रकाश उसके मुख पर छा गया।

दूसरे दिन एक हजार की थैली लेकर बीरबल ब्राह्मण के पास पहुंचा और कहा 'महाराज! आप इस मास की रकम लेने नहीं आये। लीजिए गिन लीजिए।' परन्तु ब्राह्मण ने उन्हें स्वीकार करने से इन्कार करके बड़ी नम्रता से कहा-मन्त्रीवर ! आपकी शुभमन्त्रणा से मेरे सब दरिद्र दूर हो गये। भगवती गायत्री के प्रताप से सुख और सन्तोष का परम धन प्राप्त हुआ और अब मुझे किसी और धन की किंचित्मात्र भी इच्छा नहीं।

गोधन गजधन वाजिधन और रत्न धन खान।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।।

''मन्त्रीवर ! जाओ, यह धन आपको मुबारिक रहे। में वैसे ही सदैव तुम्हारी कल्याणकामना करता रहूंगा, तुमने मुझ मार्ग से भटके हूए को शुभ मार्ग पर लगाकर प्रभुचरणों में पहुंचा दिया, मैं तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूंगा। अब वह प्रभु प्रतिदिन पल और छिन मेरे साथ हैं और कभी मेरी सुधि नहीं बिसारते। चाहे मैं उन्हें भूल जाऊं परन्तु वह मुझे कभी नहीं भुला सकता। वही सबका दाता है।

यह शब्द कहकर ब्राह्मण वहां से चला गया । परन्तु बीरबल को चैन कहाँ? वह अगले ही दिन सम्राट् अकबर को वायुमण्डल के बहाने यमुना तट पर ले गया, जहाँ भक्तजन, तपस्वी ब्राह्मण के सम्मुख बैठे अपनी दरस पिपासा शान्त कर रहे थे और उससे मूक उपदेश प्राप्त करके कृतार्थ हो रहे थे। अकबर ने दूर से ही वहाँ इतनी भीड़ देखकर पूछा-यहाँ क्या है?

बीरबल ने उत्तर दिया 'जहांपनाह ! एक सिद्ध तपस्वी ब्राह्मण जिसकी प्रसिद्धि दूर तक हो रही है।'

बादशाह भी अपने गुप्तचरों के द्वारा उनकी चर्चा सुन चुका था। बड़े शौक से पास पहुंचा और श्रद्धा से नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसके मुख पर छाई हुई ब्रह्मज्योति से सम्राट् बड़ा प्रभावित हुआ। सुअवसर पाकर बीरबल ने कहा- जहांपनाह ! यह वही कौड़ी-कौड़ी मांगनेवाला ब्राह्मण है, जिसे उस दिन बाजार में देखा था।

पहले तो सम्राट् को विश्वास न आया । परन्तु जब पूछने पर ब्राह्मण ने अपनी सब आत्म-कथा सम्राट् को सुनाई तो फिर अविश्वास का कोई कारण न रहा। सम्राट् ने चकित होकर बीरबल से पूछा कि इसमें भेद क्या है? यह इतने थोड़े से दिनों में इतना शक्तिशाली कैसे बन गया?''

बीरबल ने उत्तर दिया, 'जहांपनाह ! पहले यह अपनी गुप्तशक्ति को नहीं जानता था। कुछ दिन गायत्री के जप से उस शक्ति के प्रकट होने पर सब अज्ञान दूर हो गया। ज्ञान ही यथार्थ है और इसके प्रभाव से ही यह इतना शक्तिशाली हो गया है कि आज आप जैसे सम्राट् का सिर इसके सामने झुक रहा है।

कहते हैं कि एक बार सिंह का बच्चा गधो में मिलकर अपने आप को इतना भूल गया कि लकड़हारे की लकड़ियां तक ढोने लगा। एक दिन एक जंगल में एक सिंह ने उसे गधों के साथ चरते देखा और गर्जकर उसे अपना परिचय दिया। पहिले तो वह कुछ ठिठका, परन्तु वह गधों को भागते देखकर आप भी उनके पीछे भाग निकला, परन्तु सिंह ने लपक कर उसे पकड़ लिया और जल के समीप ले जाकर अपने और उसके रंग रूप की समानता उसे दिखाई। तब कहीं उसका गधापन दूर होकर उसे अपने सिंह होने का भान हुआ तो उसी दिन से शेर का बच्चा गरजने लग पड़ा और सब गधे और उसका मालिक भी डर के मारे भाग गये। इसी प्रकार गायत्री जप से इनका भी आत्मज्ञान उदय हो गया। यह है शक्ति गायत्री मन्त्र की, परन्तु जब तक कोई इसे क्रिया रूप में भी ले आवे।'

अनमोल गायत्री न बेच, न खरीद, जप अपना आप

विद्याभूषण - क्या गायत्री इतनी अमूल्य है कि बीरबल ने माला प्रतिदिन जपने की दक्षिणा एक हजार रुपए दी। हमारे नगर में तो ब्राह्मण एक हजार पर जप करने को तैयार है और साधारण लोग उनसे जपवाते हैं।

(शेष पृष्ठ–१२ पर देखें)

(पृष्ठ-१० से चालू.....)

प्राप्त हो। हे उत्कृष्ट मेधा वालो, तुम मानवजाति को अपना आश्रय दो।''

अङ्गिरस् ऋषि यज्ञ से संयुक्त होते हैं। यज्ञ शब्द यज धातु से बनता है, जिसके तीन अर्थ हैं- देवपूजा, संगतिकरण और दान। देवाधिदेव परमात्मा की पूजा करना प्रथम यज्ञ है। छोटे बड़े सबलोगों से जाकर मिलना, उनके दु:ख दर्द को, उनकी समस्याओं को सुनना और उसके प्रतीकार के लिए सङ्गठन बनाना दूसरे प्रकार का यज्ञ है। दु:खियों के कष्टों के निवारणार्थ अथवा किसी महान् कार्य के लिए अपने तन-मन धन को समर्पित कर देना तीसरा यज्ञ है। अङ्गिरस् ऋषि इन तीनों प्रकार के यज्ञों को करते हैं। अतएव महान् कार्य में सहायता के लिए उन्हें दूसरों से दक्षिणा, धनादि का दान भी प्राप्त होता है। वे सम्राटों के सम्राट् राजराजेश्वर प्रभु की मित्रता को प्राप्त कर लेते हैं, इसीलिए अमृतत्व, अर्थात् जीवन्मुक्ति की स्थिति को पहुँच जाते हैं। मानव उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं कि तुम्हें भद्र प्राप्त हो और अपने लिए यह याचना कर रहे हैं कि मानव जाति को अवलम्ब दो।

य उदाजन् पितरो गोमयं वस्तु-ऋतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम्।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ।।२।।

''जिन्होंने पिता बनकर हमें गो-धन प्राप्त कराया, जिन्होंने वर्ष भर निरन्तर संघर्ष करने अपने सत्य के अस्त्र से पाप अन्याय-अत्याचर के वलासुर को छिन्न-भिन्न कर दिया, ऐसे हे अङ्गिरस् ऋषियों, तुम्हें दीर्घायुष्य प्राप्त हो। हे उत्कृष्ट मेधा वालों, तुम मानवजाति को अपना आश्रय दो।''

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ।।३।।

''यह नाभानेदिष्ठ तुम्हारे गृहद्वार पर आकर रमणीय वचन बोल रहा है। हे परमात्मदेव के सच्चे पुत्र ऋषियो, उस वचन को सुनो। हे अङ्गिरस् ऋषियों, तुम्हें सुब्रह्मण्य प्राप्त हो। हे उत्कृष्ट मेधा वालों, मानवजाति को अपना आश्रय दो।'' सभी राष्ट्रों में सदा अङ्गिरस् ऋषियों की पुकार होती है। आज भी विश्व अङ्गिरस् ऋषियों को पुकार रहा है और कह रहा है- **प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः।**

समाचार

२५० वनवासी एवं गरीब जनों को कम्पल, साडी का किया गया वितरण।

नर सेवा नारायण सेवा को साकार करता आपका यह गरुकुल आमसेना आदिवासी बहुत क्षेत्र कालाहाण्डी (नवापारा) में आप सभी के सहयोग से इन सभी कार्यों को करने में समर्थ हो पा रहा है।

भवदीय
स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
संचालक एवं मुख्याधिष्ठाता-गुरुकुल आश्रम आमसेना

(पृष्ठ-११ से चालू.....)

सं. मा. शास्त्रों का कथन तो यह है कि जो द्विज गायत्री जप का मूल्य ठहरा कर जप करता है, वह मानो अपनी माता को बेचता है और घोर नरक का अधिकारी होता है। इस प्रकार गायत्री मोल लेने वाले को भी दु:ख प्राप्त होता है। जो कोई अपने हित के लिए जप कराए तो जप करने वाले को पुरस्कार ठहराये बिना ही यजमान के हितार्थ शुद्ध चित्त से जप करना चाहिए। भूलकर भी लोभ में न फंसना चाहिए और यजमान को श्रद्धा भक्ति से यथाशक्ति अपने पुरोहित के गृहस्थ की आवश्यकताओं की पूर्ति अपना धर्म समझना चाहिए। नहीं तो यजमान इस ऋण से जन्म-जन्मान्तर तक मुक्त नहीं हो सकेगा। अत: प्रत्येक द्विज को यथासम्भव स्वयं ही जप करना चाहिए। हाँ! गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, पिता-माता तथा पुत्र अथवा पुत्री, यजमान, पुरोहित यदि अपना धर्म समझकर एक दूसरे के कल्याणार्थ जप करे तो भी लाभदायक होता है।

वि. - आपने जिस मन्त्र की इतनी शक्ति बतलाई है उस मन्त्र के उपासक की उदरपूर्ति भी तो अति आवश्यक है।

सं. म. - निश्चय, परन्तु, यह मन्त्र विचार के योग्य है। कोई ऐसा वैसा मन्त्र नहीं कि प्रत्येक लोभी-लालची इससे लाभ उठा ले। लालच के विचार से जहां उसे तत्काल लाभ होगा, वहां अपनी बुरी नियत का फल भी कठिन से कठिन मिलेगा। हां, यह सार समझ लेना चाहिए कि बृहदारण्यक उपनिषद् में इसका फल यह लिखा है कि गायत्रीविद् पुरुष इसके प्रति ग्रह (बदले) में चाहे जितना भी धन प्राप्त कर लें, वह उसके एक पद ''तत् सवितुर्वरेण्यम्' के तुल्य नहीं होगा। अर्थात् ऐसा विद्वान् आवश्यकता वश चाहे कितनी भी दक्षिणा यज्ञ में ले लें तो उसे अधिक नहीं समझनी चाहिये। यही क्यों? इससे भी बढ़कर इसकी महिमा का इस प्रकार वर्णन किया गया है कि सोना, चाँदी, पशु आदि पदार्थ सब गायत्री के प्रतिग्रह में तुच्छ हैं। महत्ता इतनी है कि कोई गायत्री तत्त्ववित् इसके प्रतिग्रह में इसकी योग्यता से अधिक कुछ ले नहीं सकता, अतएव चाहे वह कुछ भी क्यों न ले ले, उसे दोष नहीं लगता जो गायत्रीविद् तीनों लोकों को धन-धान्य से पूर्ण कर इसके प्रतिग्रह में ले ले, तो वह केवल 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' के प्रतिग्रह के बराबर ही होगा।

प्रथम तो गायत्री के उपासक को किसी पदार्थ की आवश्यकता ही नहीं होती। यदि कारणवश कभी हो जाये तो परमात्मदेव स्वयमेव किसी गुप्त द्वारा उसे पूरा कर देते हैं। आप सबको निश्चयपूर्वक बड़ी उत्कट इच्छा से गायत्री का उपासक बनना चाहिए। ऐसे प्रसिद्ध मन्त्र को जिसकी महिमा पूर्वज, ऋषि, मुनि आदिकाल से वर्णन करते आये हैं, हमें थोड़ी सी तसल्ली से अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए। आगे आप लोगों की जो इच्छा हो, वही करें।

यह मनोहर उपदेश सुनकर सब सज्जन बड़े कृतार्थ हुए और संन्यासी महात्मा के श्रम का विचार करके नमस्कार कर वहाँ से विदा हुए। संन्यासी महात्मा भी थके हुए तो थे ही, उन्होंने हाथ-पैर धोकर अपने मस्तिष्क पर भी कुछ जल डालकर उसे ठण्डा किया और फिर विश्राम करने के लिए चटाई पर लेट गए।

वेद का स्पशही राज्य का गुप्तचर विभागः

– डा. अशोक आर्य

प्रत्येक राजा अपने राज्य के अन्तर्गत चल रही नागरिकों की अधिकारियों व मंत्रीगण की तथा विदेशियों की विभिन्न प्रकार की गतिविधियों पर गुप्त दृष्टि रखने के लिए तथा उन के द्वारा किये जा रहे कार्यों से देश की हो रही हानि की जानकारी रखने के लिए तथा विदेश में चल रहे अपने देश के लिए छल प्रपंच का पता रखने के लिए आवश्यक रूप से एक गुप्तचर विभाग कि व्यवस्था करता है यह गुप्तचर विभाग देश को हानि पहुंचाने। इस सब की सूचना अपने राजा तक देते हैं ताकि वह यथोचित, वाले तत्वों को चिन्हित कर इस कार्यवाही कर सकेतचर विभाग को वेद ने स्पश: का नाम दिया है तथा स्पश: यथा। शब्द को प्रस्तुत करते हुए वेद में बहुत से मन्त्र आये हैं

दिव स्पशप्र चरन्तिदमस्थ सहसाक्षा अति पश्यन्ति भूमिम : ।।

अथर्व ४।।४.१६

मन्त्र उपदेश करते हुए बता रहा है कि कोई भी राज्य गुप्तचर विभाग के बिना सुचारू कार्य नहीं कर सकता प्रत्येक राज्य में अनेक इस प्रकार के तत्व होते हैं जो अपने। इस प्रकार। स्वार्थ सिद्धी के लिए राज्य कि हानि की चिंता किये बिना गलत कार्य करते हैं के लोगों में अनेक बार तो बड़े अधिकारी और यहाँ तक कि अनेक बार तो मंत्रिगण भी सम्मिलित हो जाते हैं देश के सर्वनाश का भी कारण बन इन सब से हो रही देश की हानि। जो इन सब की जानकारी एकत्र कर इसे इस लिए यह गुप्तचर विभाग ही दे। सकती है, राजा तक देता है ताकि राजा इस देशद्रोही तत्त्वों को दबाने अथवा उनका नाश करने के लिए यथोचित कार्य कर सके। आदेश देकर इन्हें दबा सके या दण्डित करे।

मन्त्र उपमा बल से इस गुप्तचर विभाग के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए बता रहा है कि इस विभाग का यह गुप्तचर सैंकड़ों ही नहीं हजारों प्रकार से अपने देश में ही नहीं दूसरे देशों में भी अर्थात पूरी पृथ्वी पर विचरण करते हैं घटनाओं की जांच करते, घूमते रहते हैं, इस प्रकार प्रत्येक घट रही घटना की ठीक जांच करते हैं तथा निष्कर्ष रूप जो। रहते हैं में इस सब की सूचना ही अपने राजा को नहीं देते अपितु आने वाले संकट से उसे अवगत कराते हुए सावाधान भी करते हैं इससे राजा सुरक्षात्मक उपाय अपनाते हुए इस संकट से देश व इसके नागरिकों की रक्षा करता है।

केवल गुप्तचर विभाग ही नहीं वेद में अन्य भी अनेक विभागों का वर्णन मिलता है जो अपने राज्य की जीवन संरक्षा का कार्य करता है, इन अन्य विभागों में जीवन विभाग। वाहन विभाग यातायात की, प्रकाश विभाग राज्य में विद्युत् की व्यवस्था करता है, इस प्रकार अन्य भी अनेक विभाग दिए है जो राज्य की सुव्यवस्था को देखता है सुचारू व्यवस्था में अपना योग देते हैं वेद में वर्णित इन विभागों व इन के कार्यों पर प्रकाश डालते। यह तीर्थों का वर्णन किया है १८ हुए आचार्य कौटिल्य ने अपने अमर ग्रन्थ अर्थशास्त्र में यदि आज के सन्दर्भ में देखें तो कुछ पवित्र स्थान। अठारह तीथ क्या है जिनका सम्बन्ध हमारे किसी देवता से रहा होता है, हम तीर्थ मानकर उस स्थान की यात्राएं करते हैं, माथा टेकते हैं तथा अनेक प्रकार की प्रार्थनाएं करते हुए अपने वहाँ जा कर स्नान करते हैं तो कौटिल्य के। कॉटिल्य ने इन स्थानों को तीर्थ नहीं कहा। शुभ के लिए दुआएं माँगते हैं? यह तीर्थों से क्या अभिप्राय

कौटिल्य तीर्थ शब्द पर विचार करते हुए हमारे सुप्रसिद्ध इतिहासज डाकाशी प्रसाद जायसवाल ने अपनी पुस्तकहिन्दू पोलिटी में कौटिल्य के इस तीर्थ शब्द की बड़ी सुन्दर व्याख्या दी है जायसवाल का मानना है। कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में जो तीर्थ शब्द दिया है उसका अभिप्राय किसी स्थान विशेष से न होकर इस का अभिप्राय : इस का भाव यह है कि। राज्य के मंत्रियों तथा विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्षों से होता है, तीर्थ शब्द का प्रयोग करते हुए आचार्य कौटिल्य कह रहे हैं कि राज्य के सुसंचालन के लिए राज्य में मंत्रिमंडल तथा विभिन्न विभागों के अध्यक्ष नियुक्त किये जावें जो राज्य की सुचारू व्यवस्था में सदा लगे रहें

१०४ कौशाम्बी, शिप्रा अपार्टमेन्ट,
२०१०१० गाजियाबाद
दूरभाष ०१२० २७७ ३४००/ ०९७८५२८०६८

अद्वितीय पुरुष महर्षि दयानन्द

खोजा बहुत इतिहास में, पाया नहीं ऋषिवर सा इन्सान।।
जिसने सम्पूर्ण जीवन कर दिया प्राणी-मात्र हित बलिदान।।
ब्रह्मचारी अनेक हुए, भीष्म, परशुराम और हनुमान,
पर ब्रह्मचर्य ऋषिवर का था अनोखा, अनुपम और महान।
औरों ने रखे व्यक्ति विशेष हेतु, यह व्रत कठिन और बलवान,
पर ऋषि जी ने रखा, करने मानव-मात्र का कल्याण।

खोजा बहुत इतिहास में... ।।१।।

दानी भामाशाह जैसे मिले, किया सहर्ष सारी सम्पत्ति का दान,
कर्ण की प्रबल ज्ञानशीलता को, जाने और माने सारा जहान।
पर ऋषि जी के दान का, है महत्व सबसे उच्च और महान,
जिसने तन, मन, धन तो दे ही दिया, पर न देखा कभी मान व अपमान।

खोजा बहुत इतिहास में... ।।२।।

राम, कृष्ण, मोहम्मद, बुद्ध, ईसा हुए युग प्रवर्तक इन्सान,
समाज से बुराईयां हटाने में, थे जिनके अनुपम अवदान।
ऋषि जी की विशेषता यह थी, ढूंढ निकाला सब बुराईयों का निदान,
व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व विश्व का, बताया किस भांति होगा उत्थान।

खोजा बहुत इतिहास में ... ।।३।।

गुरु गोविन्द, राणा प्रताप, शेर शिवा, हुए देश भक्त महान,
बिस्मिल, भगत सिंह, सुभाष ने दे दिये देशहित अपने प्राण।
पर ऋषि जी देश-हित के साथ ही, मिटाना चाहते थे विश्व-त्राण,
इसलिए खोज वेद-ज्ञान को, जिसमें है सब समस्याओं का समाधान।

खोजा बहुत इतिहास में ... ।।४।।

मानवता के सभी गुण, थे ऋषिजी में विद्यमान,
सत्यवक्ता, निर्भिक, ईश्वर-भक्त, परोपकारी और बलवान।।
लोगों को वेदामृत पिलाया, स्वयं को करना पड़ा विष-पान,
आपकी कीर्ति बनी रहेगी, जब तक सूर्य, चन्द्रमा और आसमान,

खोजा बहुत इतिहास में... ।।५।।

ऋषिवर ! तेरा एहसान कभी नहीं भूल सकेगा यह जहान,
दे दी कसौटी सत्यार्थ प्रकाश जैसी करने सत्या सत्य की पहचान,
आप थे एक अद्वितीय पुरुष, जिसे छू तक नहीं सका था अभिमान कोई माने या न माने,
''खुशहाल'' ने तो नतमस्तक हो कर लिया मान

खोजा बहुत इतिहास में ... ।।६।।

खुशहालचन्द्र आर्य
१८०, एम. जी. रोड, कोलकत्ता

स्तुति अनेक नामों से क्यों?...

यहाँ एक शंका उठती है। माना कि वेद में नाना नामों से एक ही ईश्वर की स्तुति की गयी है, पर ऐसा हुआ क्यों? यह क्यों नहीं किया गया कि कोई सा एक नाम रख लिया जाता और सारे वेद में उसी से परमेश्वर की स्तुति होती? अनेक नामों से स्तुति करके हमें भ्रम में क्यों डाला गया? क्या इससे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध होता है? इस प्रश्न के उत्तर से पहले जरा आप संस्कृत भाषा, या संस्कृत ही क्यों, किसी भी भाषा के शब्दकोष पर दृष्टि डालिए। क्या प्रत्येक भाषा में एक ही पदार्थ के वाची अनेक नाम नहीं हैं? और क्या कोई ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में यह नियम रखता है कि हर जगह वह किसी पदार्थ को एक ही नाम से पुकारे? क्या बाइबल में एक परमेश्वर को 'गौड' 'लार्ड', 'ऑलमाइटी' आदि विविध नामों से नहीं पुकारा गया है? यदि बाइबल में कहीं गौड की जगह लार्ड आ जाता है तो क्या कोई यह कहता है कि यह 'लार्ड' 'गौड' से भिन्न कोई देव है? फिर संस्कृत भाषा तो इसके लिए प्रसिद्ध है कि उसमें एक शब्द के लिए अनेक पर्यायवाची नाम हैं। परमेश्वर को छोड़िये, अन्य पदार्थों को ही ले लीजिए। एक मामूली-सी वस्तु है, पेड़। पर उसके वाची अनेक नाम आपको मिलेंगे। वह काटा जाता है, एसलिए उसे-वृक्ष कहते हैं। वह भूमि पर उगता है, इसलिए उसे भूरुह या महीरुह कहते हैं। उसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ होती हैं, इसलिए उसे शाखी या विपटी कहते हैं। वह पैरों (जड़ों) से पानी पीता है, इसलिए वह पादप है। उसमें पत्ते होते हैं, इसलिए वह पलाशी कहाता है। चन्द्रमा को हिमांशु कहते हैं, क्योंकि उसकी किरणें शीतल हैं। वह कुमुदों को खिलाने वाला है, इसलिए उसे कुमुदबान्ध कहते हैं। रात्री का पति होने से वही निशापति है, तारों का राजा होने से उसी को नक्षत्रेश भी कहा जाता है।

भगवद्गीता का संसार में कितना प्रचार हुआ है। पर जरा संग्रह तो करिये कि उसमें अर्जुन को कितने नामों से याद किया गया है। कही वह धनञ्जय है, तो कहीं पार्थ बन जाता है, तीसरी जगह वही कौन्तेय हो गया है और कृष्ण भगवान् भी कहीं हृषीकेश हैं, तो कहीं जनार्दन हैं, कहीं अच्युत हैं, तो कहीं वासुदेव हैं। क्या कभी आपको सन्देह हुआ है कि कृष्ण जिसे कर्मयोग का उपदेश दे रहे हैं, वह एक अर्जुन नहीं है, किन्तु कई व्यक्ति है; अर्जुन अलग है, पार्थ अलग है, कौन्तेय अलग है; और उपदेश देने वाले भी कृष्ण अकेले नहीं है, किन्तु हृषीकेश, जनार्दन आदि कई व्यक्ति हैं, देखिए युधिष्ठिर धर्मपरायण होने के कारण धर्मराज कहाते थे; आधुनिक युग के मोहनदास नाम के सन्त गान्धी जाति का हाने से गान्धी जी और महात्मा होने से महात्मा जी कहाते थे।

तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि गुण-कर्म-स्वभाव आदि के अनुसार एक ही को भिन्न-भिन्न नामों से स्मरण किया जा सकता है। इसी प्रकार वेद में भी भिन्न-भिन्न गुणों की दृष्टि से परमेश्वर के भिन्न-भिन्न नाम हैं। और परमेश्वर के अनेक नाम होना तो और भी स्वाभाविक है। उसके असंख्यों अद्भुत गुण हैं, जिनके आधार पर, उसके असंख्य नाम पड़ सकते हैं। लोक में भी तो एक ही व्यक्ति पिता, चाचा, मामा, ताऊ, ताई, भतीजा, लाला जी, गुप्त जी, मन्त्री जी, सेठ जी, प्रधान जी, वैद्य जी ठेकेदार, साहिब आदि अनेक नामों से याद किया जाता है। यदि एक व्यक्ति के अनेक नामों को देखकर कहीं अन्यत्र उनके अनेक होने का भ्रम पैदा नहीं होता, तो वेद में भी नहीं होना चाहिए, जब कि साथ ही वेद ने स्वयं पहले से ही सावधान कर दिया है- **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**

वेद की अनेकनामोपासना का एक और प्रयोजन भी है। अग्नि आदि नाम केवल परमेश्वर के वाचक नहीं हैं, किन्तु प्राकृतिक, राजनितिक आदि क्षेत्रों में अन्यों के वाचक भी हैं। यदि सारे वेद में एक ही नाम से परमेश्वर की उपासना होती तो यह प्रयोजन पूरा न हो सकता कि एक ही शब्द परमेश्वर के अर्थ को भी दे और अन्य अर्थों को भी। कल्पना करिए, सारे वेद में ओम् यह इन्द्र या अन्य किसी एक ही नाम की स्तुति होती तो उससे परमेश्वर की महिमा का वर्णन हो तो जाता (यद्यपि वह भी वैसा चामत्कारिक नहीं रहता जैसा अब है), पर राजा, सेनापति, न्यायाधीश आदि राजनीतिक अर्थों, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, आत्मा आदि आध्यात्मिक अर्थों एवं अग्नि, वायु, सूर्य आदि प्राकृतिक अर्थों की छटा देखने को नहीं मिलती।

सब देव परमेश्वर कैसे हैं?

अभी हमने दिखाया है कि विविध गुणों के आधार पर एक के विविध नाम पड़ जाया करते हैं। साहित्य मे हम देखते हैं कि परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणों को लेकर भिन्न-भिन्न देव कल्पित कर लिये गये हैं। कामदेव और क्या है? जो सौन्दर्य ही सौन्दर्य है, सौन्दर्य की जिसमें पराकाष्ठ है, ऐसा एक देव कल्पित कर लिया गया है। परमेश्वर में ही सब गुणों की पराकाष्ठा है, इसलिए कामदेव को हम यह समझ सकते हैं कि सौन्दर्य का मूर्तरूप परमेश्वर ही कामदेव है। यही बात वेद के भिन्न-भिन्न देवों के विषय में है। नीचे हम कुछ देवों का संक्षिप्त स्पष्टीकरण करके यह बताने का यत्न करते हैं कि किस तरह वे परमेश्वरवाची हैं और उन-उन नामो से परमेश्वर की स्तुति करने में क्या चमत्कार पैदा होता है।

१. अग्नि- उणादि कोष में 'अगि गतौ' धातु से नि प्रत्ययं करके अग्नि बनाया गया (उ. ४.५१)। निरुक्त में अग्रपूर्वक- 'णीञ् प्रापणे' से अग्नि की सिद्धि की गयी है- **अग्निः कस्मात्? अग्रणीर्भवति,** निरु. ७.१४। जो सबका अग्रणी है, पथ-प्रदर्शक है, वह परमेश्वर अग्नि है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं- यः **अञ्चति, अच्यते, अगति, अङ्गति, एति वा सोऽयमग्निः,** जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है, इससे उस परमेश्वर का नाम अग्नि है। इसके साथ ही लोक में अग्नि आग का वाची भी है। परमेश्वर के लिए अग्नि शब्द बोलते ही हमें आग का स्मरण आये बिना नहीं रह सकता। इसलिए साभिप्राय आगवाची अग्नि शब्द को परमेश्वर के लिए प्रयुक्त किया गया है। परमेश्वर क्या है, एक प्रज्वलित आग है, जो स्वयं प्रकाशमान है और दूसरों को भी प्रकाशित करने वाला है। वह ईश्वरीय आग हृदय -वेदि में प्रज्वलित होने पर मानव के दुर्गुणों को भस्म और सद्गुणों को प्रकाशित करने का काम करती है।

२. वायु– निरुक्तकार कहते हैं– वायुर्वातेः, वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः

निरु. १०.२। वायु का अर्थ है सर्वगत या व्याप्तिमान्। धातु इसमें है गत्यर्थक 'वा' या 'वी'। जैसे मन्द, शीतल, स्वच्छ हवा हृदयसुखद और दुःख-दर्द को हर कर शान्ति देने वाली होती है, वैसा ही वह परमेश्वर है और जैसे हवा मार्ग में बाधा डालने वालों को तोड़ती-फोडती, परे खेंकती हुई और पृथिवी की धूल (रेणु, रजस्) को उड़ाती हुई चला करती है (देखें, ऋ.१०.१६८१), वैसे ही परमेश्वर भी जब मनुष्य के अन्दर प्रकट होता है, तब उसकी उन्नति में रुकावट डालने वाली विघ्न-बाधाओं को तोड़-फोड़ डालता है और उसकी आत्मा पर पड़ी हुई जो भौतिक चेतना की धूल (रजस्, रजोभाव) है, उसे उड़ा कर आत्मिक धरातल को साफ कर देता है। महर्षि ने वायु की व्युत्पत्ति की है-**यो वाति चराचरं जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः** (वा गतिगन्धनयोः। गन्धनं हिंसनम्) अर्थात् जो चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है, इससे उस परमेश्वर का नाम वायु है।

३. मित्र– 'जिमिदा स्नेहने' धातु से मित्र शब्द बना है। मित्र है स्नेह का, प्रेम का, मित्रता का देवता। परमेश्वर को मित्र इसलिए कहा गया है कि वह मित्रता का मूर्त रूप है, मानों मित्रता या स्नेह ही सशरीर आ गये हों। हम जो सांसारिक मित्र होते हैं, उनमें मित्रता के साथ अमित्रता का अंश भी अप्रकट रूप में रहता है और समय पाकर वह प्रकट भी हो जाया करता है। पर परमेश्वर को मित्र कहने का अभिप्राय है कि उसमें मित्रता ही मित्रता है, जैसे मित्रता और प्रेम के रस के भरा हुआ कोई रसगुल्ला हो और सचमुच ही वह कैसा अद्भुत मित्र है, जो बिना किसी स्वार्थ के सबसे मित्रता करता है। वेद में मित्र को 'पूतदक्ष' कहा गया है, वह पवित्रता के बल से युक्त है। उसमें छल, कपट, कालिमा नहीं हैं; वह किसी को स्वार्थवश हानि पहुँचाने का इरादा नहीं रखता। जिसे इस अनुपम मित्र की रक्षा मिल जाती है, उसे कोई शक्ति क्षति नहीं पहुँचा सकती, हार नहीं सकती, पाप उसे नहीं सताता-न हन्यते न जीयते त्वोतो, नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात्, ऋ. ३.५९.२। महर्षि लिखते हैं- मेद्यति स्नित्द्यति सिन्हाते वा स मित्रः, जो सबसे स्नेह करता है और स्वयं सबसे स्नेह करने योग्य है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम मित्र है।

४. वरुण-वरुण पाप को निवारण करने वाला है- वारयतीति वरुणः। इसलिए उसे 'रिशादस', अर्थात् मनुष्य के दोषों को हड़प जाने वाला कहा है। मित्र और वरुण वेद में अधिकतर साथ-साथ आते हैं। परमेश्वर मित्र होकर वरुण बनता है। वह मानव से प्रेम करता है और उसके पाप का वारण करता है, इसीलिए वह हम सबसे वरने योग्य है, व्रियते इति वरुणः। स्वामी जी वरुण की व्युत्पत्ति करते हैं-यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून् धर्मात्मनो वृणोति, अथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिः व्रियते वा स वरुणः परमेश्वरः अर्थात् जो सज्जन, मुमुक्ष, धर्मात्मा लोगों को वरता है, अपनी शरण में लेता है, अथवा जिसे सज्जन , मुमुक्ष, धर्मात्मा भक्तजन वरते हैं, उस परमेश्वर का नाम वरुण है।

५ इन्द्र-इन्द्र से ईश्वर के परमैश्वर्यवान् होने का गुण सूचित होता है, धातु है 'इदि परमैश्वर्ये'। यः इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः, स. प्र.। जहां परमैश्वर्य की पराकाष्ठा है, जिसके पास अनन्त ऐश्वर्य भरा पड़ा है, जो दुनिया के हम छोटे-छोटे ईश्वर कहलाने वालों में सबसे बड़ा 'परम ईश्वर' है, वह इन्द्र है। इसीलिए इन्द्र को वेद में बड़ा भारी दानी कहा गया है, वह अपने ऐश्वर्यों का भरपूर दान करता है। इन्द्र में दूसरा भाव है पराक्रम और विजय का। इंन्द्र की वीरता का बखान वेद में बहुत हुआ है। निरुक्तरकार भी कहते हैं, या च का च बलकूतिः इन्द्रकर्मैव तत्, अर्थात् जो बल के काम हैं वे इन्द्र के हैं (निरु.७.१०) इन्द्र अपनी वीरता से वृत्र या अहि का वध कर डालता है। यह वृत्र कोई किस्से-कहानी का महाकाय दैत्य नहीं है। यह है मनुष्य के हृदय में वास करने वाला पाप का असुर। प्रकृति में यह वृत्र बादल है, सूर्य के प्रकाश को ढक लिया करता है। समाज में वृत्र हैं पापी लोग, जो कि पुण्य को या सत्कर्मों के प्रवाह को रोक लेना चाहते हैं। इन्द्र शतक्रतु है, पूर्णकर्मा है; शत है पूर्णता या शत-प्रतिशत का वाची और क्रतु है कर्म, ज्ञान, संकल्प या यज्ञ। केवल इन्द्र ही १०० यज्ञ कर पाया है, अन्य किसी के वह १०० यज्ञ पूरे नहीं होने देता, इस डर से कि कहीं यह मेरे समकक्ष न हो जाए, ये पीछे से बना ली गयी कहानियाँ हैं, जिनका विवरण वेद में नहीं मिलेगा। पौराणिक इन्द्र की तरह वैदिक इन्द्र भी शचीपति है, पर वेद की शची कोई सुरांगना नहीं, किन्तु शक्ति या कर्मण्यता है। तो इन्द्र शचीपति है, इसका अर्थ हुआ कि वह शक्ति का पति है, अर्थात शक्तिशाली या कर्मवीर है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद से ही इन सब संकेतों को लेकर पुराणकारों ने उन्हें कथानक का रूप दे दिया है।

६. विष्णु– विष्णु हैं व्यापकता के देवता। **वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरं जगदिति विष्णुः** स.प्र.। जो अपनी सत्ता से चराचर जगत् में व्याप रहे हैं, वे परमेश्वर विष्णु हैं। पुराणों में जो यह लिखा है कि वामन विष्णु ने विराट् रूप धर कर अपने कदमों से त्रिलोकी को माप लिया था, वह कहानी भी विष्णु की व्यापकता को बताने वाली है और वह वेद से ही ली गयी है। **इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्–** ऋ. १.१२.१७ **यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनाति विश्वा–**ऋ. १.१५४.२ आदि वेद-वाक्यों का यही अभिप्राय है कि उस परमेश्वर ने पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ तीनों लोकों में अपने पैरों को रखा हुआ है, अर्थात् वह सर्वव्यापक है।

अस्तु, यहाँ नमूने के रूप में हमने कुछ वैदिक देवों के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार अन्य देवों का स्वरूप भी निश्चित हो सकता है। जैसे, परमेश्वर **त्र्यम्बक** इसलिए है, क्योंकि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय इन तीनों शक्तियों वाला है। वह **पशुपति** इस कारण है, क्योंकि प्राणियों की रक्षा करता है। उसका नाम रुद्र इसलिए है, क्योंकि अन्यायियों को दण्ड देकर रुलाता है- **रोदयतीति रुद्रः**, और सज्जनों के रोगों को य पाप ताप को दूर भगाता है- **रुत् दुःखं, तद् द्रवयतीति रुद्रः। विश्वकर्मा** उसे इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह विश्व की रचना करता है। त्वष्टा वह इस कारण है, क्योंकि बढ़ई की तरह गढ़ छील कर पदार्थों को रूप देता है। **बृहस्पति** वह इसलिए है, क्योंकि वह बड़े-बड़े लोकों का स्वामी है, अथवा वेद का पति है- **बृहतां लोकाना पतिः अथवा बृहती वेदवाक् तस्याः पतिः। सोम** है रसमय परमेश्वर, जिसे उपनिषत्कार ने इस रूप में अनुभव किया है- **रसो वै सः**, तै. उ. २.७। वेद के देवों का स्वरूप निश्चय करते समय हमें एक बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि उस-उस देव का वेद में कैसा वर्णन हुआ है?

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष–१० अंक–५ मुम्बई मई– २०१९ || पृष्ठ–१६ || मूल्य– रु. ९/–

वैशाख – २०७५ (२०१९) Post Date : 25-05-2019 MCN/136/2019-2021 MAHRIL 06007/31/12/21-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई–२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई–४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● **दूरभाष : २६६० २८०० / २६६० २०७५**

प्रति, ______

टिकट

उसमें कुछ वर्णन तो सभी देवों के एक से हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि सब एक ही परमेश्वर के नाम हैं और कुछ वर्णन ऐसे हैं जो प्रत्येक देव की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। उन विशेषताओं के आधार पर हमें स्वरूप-निश्चय करना चाहिए कि अमुक देव से परमेश्वर के किस गुण की सूचना मिलती है।

स्त्रीलिंगी देवों का अभिप्राय

पहले हम दिखा चुके हैं कि पुलिंगी देवों की तरह वेद में अनेक स्त्रीलिंगी देवता भी आये हैं। उनका अभिप्राय क्या होगा? बात यह है कि परमेश्वर जैसे सबका पिता है, वैसे ही माता भी हैं- **त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ,** ऋ ८.९८.११। ऋग्वेद के प्रसिद्ध वागाम्भृणी सूक्त (१०.१२५) में भी परमेश्वर के इसी मातृरूप को चित्रित किया गया है। यह अकेले वेद की ही अनुभूति नहीं है, किन्तु 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव', 'पितु मातृ सहायक स्वामि सखा, तुम ही एक नाथ हमारे हो' आदि शब्दों में लौकिक कवियों ने भी यही गाया है। इसलिए वेद के स्त्रीलिंगी देव ऐसे हैं, जो परमेश्वर के मातृरूप को बताने वाले हैं; जैसे अदिति और सरस्वती। अदिति जगत् के देवों की, दिव्य शक्तियों की, माता है, इसलिए देव आदित्य (अदिति के पुत्र) कहाते हैं। अदिति का धात्वर्थ है अखण्डनीय अविश्वाश्य, नित्य। सरस्वती देवी हृदय में ज्ञान -रस को प्रेरित करने वाली माता है। जैसे माता बच्चे को अपने दूधरूप रस का पान कराती है, वैसे ही परमेश्वर माता बनकर मानवजाति के शिशुओं को ज्ञान-रस का पान कराता है।

इसके अतिरिक्त कुछ स्त्रीलिंग़ी देवताएँ ऐसी जो किन्हीं प्राकृतिक वस्तुओं या किन्हीं भावनाओं को सूचित करती हैं। जैसे उषा देवी या तो रात्रि के पश्चात् खिलने वाली प्राकृतिक उषा है या हृदयाकाश में उदित होने वाली ज्ञान की उषा है। रात्रि देवी या तो दिन के बात आने वाली प्राकृतिक रात है, या अज्ञानान्धकार की और तमोगुण की निशा है। श्रद्धा कोई विशेष देवी नहीं है, बल्कि वह आस्तिक्य- बुद्धि है, जिसे लोक में भी श्रद्धा नाम से ही कहते हैं। **उर्वशी** और **गौरी** विद्युत् है। पृथिवी देवी भूमि को ही कहा गया है। इसी प्रकार अनुमति, राका, सिनीवाली, कुहू, सरण्यू आदि के भी अपने-अपने अर्थ हैं, जो कि निरुक्त आदि ग्रन्थों में स्पष्ट किये गये हैं।

अब रह जाती है देवों की पत्नियों की बात। अग्नि की पत्नी अग्नायी है, वरूण की पत्नी वरुणानी है, इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी है, रुद्र की पत्नी रोदसी है। अन्य सब देवों की भी अपनी-अपनी पत्नियाँ हैं, ऐसा वेद कहता है, चाहे वेद में उन सबका पृथक-पृथक् नाम न आता हो। तो ये देव-पत्नियाँ क्यो हैं? विचार करने से प्रतीत होता है कि ये पत्नियाँ उन-उन देवों की सहचारिणी क्रियाशक्तियाँ हैं। जैसे अग्नि में जो प्रकाश की शक्ति है वह अग्नायी है; वरुण में जो पाप-निवारण की शक्ति है वही वरुणानी है। देव अपनी पत्नियों के साथ हमारे अन्दर आये इसका अभिप्राय यही है कि वे अपनी-अपनी क्रियाओं के प्रवाह के साथ हमारे हृदय में अवतीर्ण हों; ऐसा न हो कि वे खाली हमारे अन्दर आकार बैठ जाएँ और करें कुछ न। अग्नि तो अपनी प्रकाश की क्रिया के साथ आये और हम ज्ञान-प्रकाश से जगमगा उठें। वरुण आये तो अपनी पाप-निवारण की क्रिया के साथ आये आर हम निष्पाप हो जाएँ। इन्द्र आये तो अपनी वीरता और विजय-प्रदान की क्रिया के साथ आये और हमारे अन्दर वीरभावों का सञ्चार हो जाए तथा सब विघ्न -बाधाओं पर विजय पाते हुए हम आगे बढ़ते चलें। पत्नियाँ क्रियाशक्तिरूप हैं, यह इससे भी स्पष्ट है कि इन्द्र की पत्नी जो इन्द्राणी है, उसका नाम शची है; और शची का अर्थ होता है क्रिया (निघं. २.१)। तो इसका यह अभिप्राय हुआ कि इन्द्राणी शक्तिरूप है, वह कोई सचमुच की देव-स्त्री नहीं है। वैसे ही अग्नायी, वरुणानी आदि अन्य देव-पत्नियाँ भी शक्तिरूप ही होनी चाहिएँ। महर्षि दयानन्द ऋ. १.२२.९ के भाष्य में 'देवानां पत्नीः' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं- **यस्मिन् यसिस्मन् द्रव्ये या या : शक्तयः सन्ति तास्तास्तेषां द्रव्याणां पत्न्य इवेत्युच्यन्ते,** अर्थात् जिस-जिस द्रव्य में जो-जो शक्तियाँ हैं, वे-वे उन द्रव्यों की मानो पत्नियाँ हैं।

देवों के अंग, वाहन आदि का अभिप्राय

यदि सब देव परमेश्वर के नाम हैं और परमेश्वर है निराकार, तो वेदवर्णित देवों के अंग-प्रत्यंगों का क्या अभिप्राय है? देव रथ पर चढ़ते हैं, इसका क्या अभिप्राय है? उनके अपने-अपने वाहन या सवारियाँ हैं, यह कैसे सम्भव है? और उनके पास अलग-अलग अपने शस्त्र हैं, इससे क्या अभिप्रेत है? पहले अंगों को ही लेते हैं। परमेश्वर के अंगों की कल्पना आलंकारिक है। निस्सन्देह ऐसे मन्त्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनमें मतभेद हो ही नहीं सकता कि वहाँ अंगों का वर्णन आलंकारिक है। देखिए-

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशांगुलम्॥ - ऋ. १०.९०.१

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥

-ऋ. १०.८१.३

साभार-आर्ष-ज्योति

❖❖❖